पढ़ें और सीखें योजना

मध्यकालीन भारतीय गणित

की

ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ

राधाचरण गुप्त

विभागीय सहयोग
राम दुलार शुक्ल

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राक्कथन

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को बेहतर इंसान बनाना है। शिक्षा मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व नैतिक दिशा में विकास करके उसे एक सम्पूर्णता प्रदान करती है। हमारी शिक्षा-व्यवस्था में ऐसा तभी संभव हो पाएगा जब बच्चों में पूर्व-प्राथमिक व प्राथमिक स्तर से ही ऐसे मूल्यों की पौध लगाई जाए कि वे बौद्धिक और काल्पनिक क्षमताओं का विकास करना सीखने लगें।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् बच्चों में अध्ययन की क्षमता व रुचि दोनों का ही विकास करने के लिए सदा तत्पर रही है और समय-समय पर इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयास व नए-नए प्रयोग करती रहती है। पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के प्रकाशन से भिन्न परिषद् ने बच्चों में अध्ययन प्रवृत्ति के विकास के लिए समय-समय पर पूरक अध्ययन सामग्री तथा उसके अंतर्गत प्रयोगात्मक स्तर पर कई पुस्तक-मालाएँ व परियोजनाएँ शुरू की हैं। इन सभी प्रयासों का मूल उद्देश्य है बच्चों का पुस्तकों से परिचय करना।

पूरक अध्ययन सामग्री के प्रकाशन को इस विचार से जन्म दिया गया है कि बच्चों को पाठ्यपुस्तकों की एकरसता से इतर कुछ ऐसी अध्ययन सामग्री भी दी जानी चाहिए जो कथ्य और कलेवर दोनों ही पक्षों में समृद्ध हो। साथ ही परोक्ष रूप से उन तक वांछित मानवीय मूल्य भी पहुँचाती हो।

लगभग 35 वर्ष से पूरक अध्ययन की पुस्तकों के प्रकाशन का काम जारी रखते हुए परिषद् में इस क्षेत्र में कुछ और अधिक करने की ललक थी और इसी का परिणाम है हमारी **पढ़ें और सीखें** योजना। इसके अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से यह कोशिश की गई है कि बच्चे इस दुनिया में बसी हुई अनजान दुनिया से भी परिचित हों तथा

उन्हें अपने भीतर के संसार को जानने का भी मौका मिले। उनमें पुस्तकों के प्रति अपनापन व लगाव उपजे।

इन पुस्तकों में कथा साहित्य, भारतीय संस्कृति और इतिहास, विभिन्न महापुरुषों की जीवनियों व आत्मकथाओं आदि से लेकर विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे आधुनिकतम आविष्कारों व विकासकारी गतिविधियों तथा जनसंख्या शिक्षा तक का फैलाव समेटा गया है। पुस्तकों के माध्यम से अपने बाल व किशोर पाठकों को परिषद् सामाजिक जागरूकता, धर्म-निरपेक्षता और वैज्ञानिक मानवतावाद सरीखे मूल्य भी दे रही है।

पढ़ें और सीखें पुस्तक-माला के अंतर्गत पाठ्यक्रम की पुस्तकों से कुछ हटकर तैयार की जाने वाली विज्ञान की पुस्तकों का उद्देश्य है पाठकों को वैज्ञानिक विषयों की सही जानकारी देना तथा उनमें वैज्ञानिक अभिरुचि का विकास करना। आशा है प्रो. राधाचरण गुप्त द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक **मध्यकालीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ** हमारे पाठकों के लिए आनंदप्रद व उपयोगी सिद्ध होगी।

पढ़ें और सीखें पुस्तक-माला के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने की दिशा में दिए गए हर सुझाव का परिषद् स्वागत करेगी।

अशोक कुमार शर्मा

निदेशक

नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

आमुख

पढ़ें और सीखें योजना के अंतर्गत अब तक काफी पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इस योजना के अंतर्गत विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे भौतिकी, रसायन, गणित, पर्यावरण, अंतरिक्ष एवं ब्रह्मांड विज्ञान, नाभिकीय एवं सौर ऊर्जा, आयुर्विज्ञान, समुद्र विज्ञान, राकेटरी, कम्प्यूटर, बायोटेक्नालॉजी, इंजीनियरिंग आदि में पुस्तकों का निर्माण हुआ है। विज्ञान के अन्य बहुत से नए क्षेत्रों में पुस्तकों का लिखना जारी है। विज्ञान के क्षेत्र में तैयार की जाने वाली इन पुस्तकों के लेखन में हमारे देश के जाने माने वैज्ञानिक सक्रिय योग दे रहे हैं और वे अपनी वैज्ञानिक अनुभूतियों को सरल एवं सुरुचिपूर्ण भाषा में बच्चों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। देश के इन लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों को योजना में सम्मिलित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इन पुस्तकों में लिखी गई विषयवस्तु प्रामाणिक होगी तथा हमारे बच्चे यह महसूस करेंगे कि देश के जाने माने वैज्ञानिक उनके लिए उनके स्तर पर उतरकर विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को सुंदर एवं सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए कृत संकल्प हैं। इससे बच्चों को, जो हमारे भावी वैज्ञानिक हैं, विज्ञान के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलेगा। विज्ञान की इन पुस्तकों के द्वारा हमें पूर्ण आशा है कि बच्चों को आधुनिकतम वैज्ञानिक विषयों की सही जानकारी मिलेगी, साथ ही उनके अंदर एक वैज्ञानिक मानसिकता भी पैदा होगी।

प्रस्तुत पुस्तक **मध्यकालीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक झलकियाँ** के लेखन के लिए प्रो. राधाचरण गुप्त ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। इस योजना के अंतर्गत तैयार हो रही विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का मार्गदर्शन दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति प्रो. रामचरण मेहरोत्रा कर

रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन के संयोजन एवं अंतिम संपादन आदि का दायित्व विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल वहन कर है।

मैं प्रो. रामचरण मेहरोत्रा और अपने सहयोगी प्रो. शुक्ल को हार्दिक धन्यवाद एवं बधाई देता हूँ।

इस पुस्तक को इतने अच्छे ढंग से प्रकाशित करने के लिए मैं परिषद् के प्रकाशन प्रभाग के कार्यकर्ताओं, विशेषकर विभागाध्यक्ष श्री आर. एस. सक्सेना को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों एवं बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी अधिक उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

अमर नाथ महेश्वरी

संयुक्त निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

दो शब्द

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी) की **पढ़ें और सीखें** योजना के अंतर्गत यह एक छोटा-सा प्रयास है। जब परिषद् के प्रगतिशील निदेशक डॉ. अशोक कुमार शर्मा ने मुझे इस दिशा में विज्ञान के विषयों का कार्यभार संभालने के लिए आमंत्रित किया तो अपने वैज्ञानिक मित्रों की अतिव्यस्तता के कारण यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने में मुझे संकोच था।

इस दिशा में मेरा प्रयास रहा है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के जाने-माने विद्वानों को इस सराहनीय कार्य के लिए निमंत्रित कर सकूँ। ऐसा मेरा विश्वास है कि खोज और अनुसंधान की आनंदपूर्ण अनुभूतियों वाले वैज्ञानिक ही अपने आनंद की एक झलक बच्चों तक पहुँचा सकते हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ कि उन्होंने अंकुरित होने वाली पीढ़ी के लिए अपने बहुमूल्य समय में से कुछ क्षण निकालने का प्रयास किया। बालक राष्ट्र की सबसे बहुमूल्य और महत्वपूर्ण निधि है और मेरे लिए यह किंचित आश्चर्य और संतोष की बात है कि हमारे इतने लब्धप्रतिष्ठ और अत्यंत व्यस्त वैज्ञानिक बच्चों के लिए थोड़ा परिश्रम करने के लिए सहर्ष मान गए हैं। मैं सभी वैज्ञानिक मित्रों के लिए हृदय से आभारी हूँ।

इन पुस्तकों की तैयारी में हमारा मुख्य ध्येय रहा है कि विषय ऐसी शैली में प्रस्तुत किया जाए कि बच्चे स्वयं इसकी ओर आकर्षित हों, साथ ही भाषा इतनी सरल हो कि बच्चों को इनके अध्ययन से विज्ञान के गूढ़तम रहस्यों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इन पुस्तकों के पढ़ने से उनमें अधिक पढ़ने की रुचि पैदा हो, उनके नैसर्गिक कौतूहल में वृद्धि हो जिससे ऐसे कौतूहल और उसके समाधान के लिए स्वप्रयत्न उनके जीवन का

एक अंग बन जाए।

यह योजना परिषद् के वर्तमान निदेशक डॉ. अशोक कुमार शर्मा की प्रेरणा से चल रही है। मैं उन्हें इसके लिए बधाई और धन्यवाद देता हूँ।

प्रो. राधाचरण गुप्त ने इस पुस्तक को लिखने के लिए मेरा अनुरोध स्वीकार किया जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। परिषद् के विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रो. राम दुलार शुक्ल विज्ञान की पुस्तकों के लेखन से संबंधित योजना के संयोजक एवं संपादक हैं और बहुत परिश्रम और कुशलता से अपना कार्य कर रहे हैं। प्रो. अमरनाथ महेश्वरी पढ़ें और सीखें योजना के संचालक हैं। मैं इन दोनों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आशा है कि ऐसी पुस्तकों से हमारी नई पीढ़ी की बाल्यकाल ही में वैज्ञानिक मानसिकता का शुभारंभ हो सकेगा और विज्ञान के नवीनतम ज्ञान के साथ ही साथ उन्हें अपने देश की प्रगतियों एवं वैज्ञानिकों के कार्य की झलक मिल सकेगी जिससे उनमें अपने राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना का भी सृजन होगा।

रामचरण मेहरोत्रा

अध्यक्ष

पढ़ें और सीखें योजना

(विज्ञान)

प्रो० राधाचरण गुप्त का परिचय

सन् 1935 में जन्मे श्री राधाचरण गुप्त ने लखनऊ विश्वविद्यालय से दो स्वर्ण पदक प्राप्त किये जिनमें से एक एम.एससी. (1957) में प्रथम स्थान पाने के कारण और दूसरा खेलकूद में दक्षता के कारण। सन् 1971 में राँची विश्वविद्यालय से गणित के इतिहास में पीएच. डी. प्राप्त करने के बाद इसी क्षेत्र में विस्तृत शोध का कार्य करते रहे। सन् 1972 में डॉ. गुप्त गणित के इतिहास सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय आयोग में भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त हुए।

सन् 1979 से प्रो. गुप्त **गणित भारती** (ISSN 0970-0307) नाम की पत्रिका का सफल सम्पादन कर रहे हैं। इन्होंने भारतीय गणित पर लगभग 400 लेख प्रकाशित करके उसका देश-विदेश में प्रचार और प्रसार किया। सन् 1995 में प्रो. गुप्त को अन्तर्राष्ट्रीय अकादमी ऑफ वैज्ञानिकी-इतिहास का सदस्य चुना गया और 1996 में भारतीय विज्ञान परिषद् ने उनको **डिस्टिंग्विस्ड सर्विस अवार्ड** से सम्मानित किया।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं । जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा । क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है ।

विषय-सूची

अध्याय 1

गलती बताओ तो ज्ञानी कहलाओ

बात है इस शताब्दी के प्रारम्भ की और स्थान–सुदूर दक्षिण भारत के एक विद्यालय का प्रांगण। दृश्य है एक कक्षा का जिसमें गणित के अध्यापक कुछ किशोर विद्यार्थियों को भाग की विधि समझा रहे हैं। अध्यापक ने बताया–

"यदि चार आमों को चार बालकों में बाँटा जाए तो प्रत्येक को एक आम मिलेगा।"

"यदि दस आमों को दस व्यक्तियों में विभाजित किया जाए तो प्रत्येक को एक आम मिलेगा।"

"इसलिए", वह आगे समझाते हुए बोले, "यदि किसी संख्या का उसी संख्या से भाग किया जाए तो भागफल हमेशा एक होता है।"

कक्षा में एक मेधावी छात्र भी था जो इस कथन का दोष समझता था। वह तुरंत खड़ा हो गया और पूछने लगा–

"महोदय, यदि शून्य आमों को शून्य व्यक्तियों में विभाजित किया जाए तो क्या प्रत्येक को एक आम मिलेगा।"

इस असाधारण प्रश्न को सुनते ही अध्यापक मन में कुछ विचलित से हुए और उनको लगा कि निष्कंटक पढ़ाने में कुछ रोड़ा अटक गया। इसलिए विद्यार्थी की भर्त्सना करते

हुए डाँटकर बोले–

"निर्बुद्धि प्रश्न मत करो। शून्य का कोई मान (value) नहीं होता, अतः शून्य फलों के विभाजन की बात सम्भव नहीं है।"

लेकिन विद्यार्थी चुप नहीं रहा, बल्कि आत्मविश्वास भरे शब्दों में गम्भीरतापूर्वक बोला-

"महोदय, शून्य का मान होता है क्योंकि, यदि 2 के दाईं ओर हम एक शून्य रख दें तो 20 हो जाता है, और जब हम दो शून्य रखते हैं तो 200 हो जाता है, इत्यादि।"

"अतः आप" उसने जोर देकर कहा "यह नहीं कह सकते कि शून्य का कोई मान नहीं होता।"

अध्यापक के पास कोई उत्तर न था। अतः संवाद वहीं रुक गया, और छात्र बैठ गया।

यह घटना हुई थी कुंभकोणम के टाउन हाई स्कूल में, और वह मेधावी छात्र था श्रीनिवास रामानुजन। बाद में उसने अपने गणितीय चमत्कारों से दुनिया को आश्चर्यचकित किया और आधुनिक युग के भारत का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ कहलाने का श्रेय पाया।

वह अध्यापक कौन था, इसे जानने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उनका कथन, कि–

$$\frac{N}{N}=1 \qquad \text{(A)}$$

सदैव सही नहीं है जबतक N परिमित लेकिन शून्य से भिन्न संख्या न हो। गणित में जो वास्तविक संख्याएँ हैं उनमें शून्य भी सम्मिलित है। सच पूछो तो शून्य एक महत्वपूर्ण संख्या है जिसके अनेक विचित्र गुण होते हैं। इनमें से एक विशेष गुण यह है कि $\frac{0}{0}$ का मान अनिर्धारित या अनिर्णीत (indeterminate) है। उसका सीमान्त मान (limiting value) कुछ भी हो सकता है।

$\frac{0}{0}$ का मान निर्धारित क्यों नहीं है, इसको समझने का एक सरल उपाय हम बताते हैं। इसके लिए हम पूर्णांकों का पूरा-पूरा चले जाने वाला भाग, अर्थात्

$$\frac{p}{q} = n \qquad (B)$$

को बांटने के साधारण अर्थ में लेते हैं। उदाहरण के लिए एक टोकरी में रखे आमों को एक पंक्ति में खड़े तमाम छात्रों में बाँटना है। मान लो, टोकरी में 24 आम हैं, और प्रत्येक को 2 आम के हिसाब से बाँटने का कार्य एक तरफ शुरू किया गया।

जी हाँ, आप जरा ध्यान से देखिए कि क्या हो रहा है, और बांटने वाला अपना काम ठीक से कर रहा है या नहीं। बाँटने वाला टोकरी में से 2 आम निकालकर तुरंत पंक्ति में खड़े पहले छात्र के थैले में डाल देता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार 2 आम निकालकर क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे इत्यादि छात्रों के थैलों में डालता हुआ आगे बढ़ता जाता है।

यह सिलसिला पंक्ति के 12 वें छात्र तक जारी रहता है। इसके बाद बाँटने वाला पाता है कि टोकरी में अब कोई आम नहीं बचा। अर्थात् टोकरी में आमों की संख्या शून्य है। अतः बाँटने का काम बंद हो गया।

नतीजा क्या निकला। यही कि जब 24 आमों को 2 आम प्रति छात्र के हिसाब से बाँटें तो 12 छात्रों को आम मिलेंगे। यदि आम की जगह संतरे और छात्रों के स्थान पर चपरासी होते तो भी परिणाम वैसा ही होता। गणितीय भाषा में इसी बात को हम कहेंगे कि यदि 24 में 2 का भाग दिया जाए तो नतीजा यानी भागफल 12 आएगा। अर्थात्

$$\frac{24}{2} = 12$$

इस गणितीय समीकरण के आधार पर हम कहते हैं कि $\frac{24}{2}$ का मान या मूल्य (Value) 12 है।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि $\frac{24}{2}$ का मान निकालने के लिए हम आमों के वितरण का सहारा ले सकते हैं। यानी हम 24 आम लें और उनको 2 आम प्रति लड़के के हिसाब से तब तक बाँटें जब तक शेष शून्य न हो जाए।

जितने छात्रों को आम मिले, उनकी संख्या (यहाँ 12) ही $\frac{24}{2}$ का मान होगा।

कुछ मजेदार परिणाम निकालने के पहले इस विधि की समझ को पक्का करेंगे जिसके लिए एक उदाहरण और लेते हैं । वह है 18/3 का मान निकालना।

ऊपर की विधि के अनुसार हम 18 आम लेते हैं और प्रति छात्र 3 के हिसाब से बाँटना शुरू करते हैं। हम पाएँगे कि छठे छात्र को आम देने के बाद शेष शून्य हो जाएगा। जिसके साथ भाग देने की क्रिया भी समाप्त हो जाएगी। चूंकि आम पाने वालों की संख्या 6 है, इसलिए, 18/3 का मान 6 हुआ।

आशा है कि तुम इस विधि से सरल स्थिति में $\frac{p}{q}$ का मान निकालना सीख गए होगे।

कुछ अन्य बातें भी आसानी से समझ में आ जायेंगी। यदि p स्थिर हो, तो जैसे-जैसे q छोटा होगा, $\frac{p}{q}$ का मान बढ़ेगा। जैसे-

$$\frac{600}{50} = 12;$$
$$\frac{600}{30} = 20;$$
$$\frac{600}{10} = 60;$$
$$\frac{600}{3} = 200,$$

इत्यादि

और यदि q स्थिर हो तो $\frac{p}{q}$ का मान p के कम ज्यादा होने के साथ कम ज्यादा हो जाएगा। जैसे-

$$\frac{2400}{30} = 80;$$

$\frac{1200}{30} = 40;$

$\frac{900}{30} = 30;$

$\frac{600}{30} = 20;$

$\frac{300}{30} = 10,$ इत्यादि

$\frac{p}{q}$ के मान का इस तरह घटने–बढ़ने के स्वभाव को आम वितरण की विधि से आसानी से समझा जा सकता है।

इस प्रकार यदि तुम $\frac{p}{q}$ के मान को अच्छी तरह समझ गए हो तो निम्नलिखित तीन उदाहरणों में प्रत्येक का मान क्या होगा, सोचकर निकालो।

उदाहरण	उत्तर
(a) 0/2	शून्य
(b) 3/0	अनन्त
(c) 0/0	अनिर्णीत

पहले उदाहरण (a) में आमों की संख्या शून्य यानी टोकरी खाली होने के कारण पहले छात्र को भी इच्छित 2 या कोई आम नहीं दिया जा सकता । वास्तव में टोकरी में आमों की संख्या प्रारंभ में ही शून्य है। यानी शेष शुरू में ही शून्य होगा और उसी के साथ प्रारंभ में ही भाग की क्रिया समाप्त समझी जा सकती है । इसलिए आम पाने वाले छात्रों की संख्या शून्य है । अतः

$0/2 = 0$

दूसरा उदाहरण (b) मजेदार है। टोकरी में 3 आम हैं। लेकिन प्रति छात्र 0 आम ही देना है। केवल दिखावे के लिए बाँटने वाला अपना हाथ प्रत्येक बार टोकरी में डालता है, खाली मुट्ठी बंद करता है, और झूठमूठ के लिए क्रमशः पहले, दूसरे, तीसरे इत्यादि

छात्र के थैलों में ले जाकर मुट्ठी खोल देता है।

और शून्य आम देने की औपचारिकता वह चाहे जितनी लम्बी पंक्ति में खड़े चाहे जितने छात्रों के साथ करता जा सकता है। टोकरी में बचे आमों की संख्या 3 ही रहेगी यानी शेष कभी शून्य नहीं होगा। इस प्रकार 0 आम पाने वाले छात्रों की संख्या अनगिनत होगी। यानी उसका कोई अन्त नहीं आएगा। अर्थात् (3/0 = अनन्त, जिसके लिए संकेत है, $+\infty$)

अंतिम उदाहरण (c) सबसे मजेदार है। इसे ध्यान से समझिए। यहाँ आमों की संख्या शून्य (यानी टोकरी खाली) है और प्रति छात्र शून्य आम (यानी कुछ नहीं) देना है। यदि प्रारम्भ में ही, उदाहरण (a) की तरह, टोकरी पर गौर किया जाए तो "शेष" शून्य होने के कारण क्रिया समाप्त समझी जा सकती है। अतः इस स्थिति में

$0/0 = 0$

लेकिन चूंकि प्रत्येक छात्र को 0 आम ही देना है, हम मर्जी के अनुसार जितने छात्रों को चाहें, उतनों को आम दे सकते हैं और उसके बाद टोकरी का शेष शून्य बताकर क्रिया बन्द कर सकते हैं। जैसे यदि एक छात्र को आम देने के बाद समाप्ति की तो $\frac{0}{0} = 1$ इत्यादि। यदि दो छात्रों को आम देने के बाद समाप्ति की तो $\frac{0}{0} = 2$ इत्यादि । और यदि चाहें तो, उदाहरण *(b) की तरह अनगिनत छात्रों को भी आम पाने का भागीदार बना सकते* हैं।

अर्थात् 0/0 का मान अनिर्णीत है। वह *स्थिति के अनुसार* कुछ भी हो सकता है। जी हाँ, शून्य भी, अन्य कोई परिमित संख्या भी, या अनन्त भी।

इस लम्बे विचार-विमर्श के बाद हम फिर रामानुजन की कक्षा की बात पर आते हैं, जहाँ से चर्चा प्रारम्भ हुई थी । तोते की तरह रटने की बात अलग है, लेकिन यदि गणित की सूक्ष्मताओं को समझना चाहते हो तो उसका अध्ययन बारीकी से करना होगा। इसके लिए रामानुजन की तरह गणित का प्रेमी बनना होगा। बड़ी लगन से गणित का अध्ययन करना होगा। तब कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आप भी दूसरों की गलतियाँ पकड़ लें। गणित के स्वस्थ तथा गहरे ज्ञान के कारण रामानुजन को दूसरों की भूलों का पता लगा।

गणितीय दोषों, भूलों और गलतियों का पता लगाना गणित के ठोस ज्ञान का परिचायक

है और बुद्धिमता का मापदंड। नीचे हम गणित के विभिन्न क्षेत्रों से कुछ दोषपूर्ण क्रियाओं से युक्त निगमन उपपत्तियाँ, व्युत्पत्तियाँ और अन्य विधियाँ दे रहे हैं। उनमें कहाँ और कौन-सी गलतियाँ की गई हैं, इसे खोजने और बताने का प्रयत्न कीजिए। इससे बुद्धि का व्यायाम होगा और वह और पैनी हो जाएगी। यह ध्यान रखिए कि दूसरे की गलती खोजने और बताने में आपका ध्येय उसे नीचा समझना या दिखाना नहीं होना चाहिए, क्योंकि गलतियाँ सबसे होती हैं। जी हाँ, बड़े-बड़े गणितज्ञों से भी। स्वयं रामानुजन ने भी कुछ गलतियाँ की हैं।

'To err is human' एक सामान्य कहावत है।

बिना किसी दुर्भावना के गलती (fault) खोजना शिक्षाप्रद और लाभकारी होता है। तो फिर नीचे का दोषपूर्ण गणित ध्यान से पढ़िए, उसकी गलतियाँ बताइए और ज्ञानी कहलाइए।

बीजगणित तथा अंकगणित

सबसे पहले हम *बीजगणित* का विषय लेते हैं जिसके बारे में कहा गया है कि "बीजं च विमलामतिः" अर्थात् "बीजगणित निर्मल बुद्धि है"। यानी बीजगणित को एक प्रकार से निर्मल बुद्धि के तुल्य बताया गया है। तो क्यों न हम भी गणितीय तुल्यताओं (अर्थात् समीकरणों) से शुरू करें।

उदाहरण (1) : यदि $x = 1$ (1)

तो $x^3 = 1$ (2)

और $x^5 = 1$ (3)

अत : $\frac{x^5}{x^3} = \frac{1}{1} = 1$

अर्थात्, $x^2 = 1$ (4)

यानी $x = \pm 1$

अर्थात् समीकरण (4) में x का मान +1 भी हो सकता है और −1 भी। लेकिन ऊपर (1),(2) या (3) किसी में भी, हमनें $x = -1$ नहीं लिया और न ले सकते हैं। इसलिए x का −1 मान सही नहीं है। बताइये, गलती कहाँ है?

उदाहरण (2) : समीकरण $x^2 - x + 1 = 0$ (5)
को सरल विधि से (बिना सूत्र लगाए) हल करना। यहाँ (5) को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

$$x - x^2 = 1 \quad (6)$$

यानी $x(1-x) = 1$

अर्थात् $1-x = \frac{1}{x}$, क्योंकि x शून्य नहीं है।

या $x+\frac{1}{x}=1$

या $x+\frac{1}{x} = x - x^2$, समीकरण (6) से।

दोनों ओर से x, घटाने पर

$$\frac{1}{x} = -x^2$$

यानी $x^3 = -1$

अतः $x = -1$

लेकिन इस मान को दिए गए समीकरण (5) में रखने पर पता लगता है कि यह मान सही नहीं है। तो फिर हमने कौन-सी गलती की।

उदाहरण (3) : हम जानते हैं कि, गुणनखंड करने पर

$$(a^2 - b^2) = (a+b)(a-b) \quad (7)$$

इसमें a और b का मान कुछ भी हो सकता है। अतः (7) में हम a और b की जगह x लेते हैं, तो (7) का रूप हो जाएगा

$$x^2 - x^2 = (x+x)\,(x-x) \qquad (8)$$

लेकिन बाईं ओर x बाहर (common) लेने के बाद

$$x^2 - x^2 = x\,(x-x)$$

अतः (8) को अब हम इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$x\,(x-x) = (x+x)\,(x-x)$$

दोनों तरफ के समान या एक से (same) गुणनखंड को काटने पर मिलेगा

$$x = x+x$$

अर्थात् $1x = 2x$

यानी $1 = 2$ (9)

क्योंकि दोनों तरफ से x कट गया। लेकिन (9) तो स्पष्टतया गलत है।

उदाहरण (4) : एक रुपये में 100 पैसे होते हैं, यह तो सब जानते हैं। लेकिन एक रुपये को एक पैसे के बराबर सिद्ध करने का जादू भी देखिए।

एक रुपया = 100 पैसे

= (10 पैसे) x (10 पैसे) (10)

लेकिन 10 पैसे तो 1/10 रुपये के तुल्य होते हैं, अतः समीकरण (10) से

एक रुपया $= \frac{1}{10}$ रुपये x $\frac{1}{10}$ रुपये

$= \frac{1}{100}$ रुपये = 1 पैसे !

उदाहरण (5) : हम आसानी से देख सकते हैं कि

$$25-60 = 49-84$$

अब दोनों तरफ 36 जोड़ने पर

$$25-60+36 = 49-84+36$$

अर्थात् $5^2 - 2\,(5 \times 6) + 6^2 = 7^2 - 2\,(7 \times 6) + 6^2$

यानी $(5-6)^2 = (7-6)^2$, क्योंकि $a^2 - 2\,(a \times b) + b^2 = (a-b)^2$

वर्गमूल लेने पर $5-6 = 7-6$

और अंत में दोनों ओर 6 जोड़ने पर

$$5=7$$

जो कि स्पष्टतया सही नहीं है।

उदाहरण (6) : हम जानते हैं कि,

$$(a^3-b^3) = (a-b)(a^2+ab+b^2) \quad (11)$$

इसमें $a = x$ और $b = x$ रखने पर

$x^3-x^3 = (x-x)(x^2+xx+x^2)$

लेकिन $x^3-x^3 = x^2(x-x)$

अत: $x^2(x-x) = (x-x)(x^2+x^2+x^2)$

अर्थात् $x^2 = x^2+x^2+x^2$

या $x^2 = 3x^2$

यानी $1=3$

इसी प्रकार $(a^4-b^4) = (a^2+b^2)(a+b)(a-b)$

से हम $x^3 = 2x^2 \ \ 2x$

या $x^3 = 4x^3$

यानी $1=4$, सिद्ध कर सकते हैं, इत्यादि।

उदाहरण (7): अनन्त गुणोत्तर श्रेणी के योगफल के सूत्र से,

$$a+ar+ar^2+ar^3+\ldots\ldots = \frac{a}{1-r} \quad (12)$$

इसे लगाकर हम आसानी से देख सकते हैं कि ($a=x$, $r=x$)

$$x+x^2+x^3+x^4 \text{------} = \frac{x}{1-x} \quad (13)$$

उसी सूत्र (12) को लगाकर निम्नलिखित श्रेणी के लिये भी योगफल प्राप्त कर सकते हैं ($a=1$, $r = 1/x$)

$$1+\frac{1}{x}+\frac{1}{x^2}+\frac{1}{x^3}+------=\frac{1}{1-\frac{1}{x}}=\frac{x}{x-1} \quad (14)$$

अतः (13) और (14) को जोड़ने पर

$$(x+x^2+x^3+........)+(1+\frac{1}{x}+\frac{1}{x^2}+.......)=\frac{x}{1-x}+\frac{x}{x-1}=\frac{x}{1-x}-\frac{x}{1-x}=0 \quad (15)$$

जो कि सही नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि यदि x का मान धनात्मक (positive) है, तो बाईं ओर के सारे पद धनात्मक होंगे। तो फिर उनका योग शून्य कैसे हो सकता है। कुछ भी हो परिणाम 18 वीं शताब्दी में यूरोप के महान् गणितज्ञ लियोनार्ड ऑयलर (Euler) ने भी इसी (15) को गलत विधि से "सिद्ध" किया था।

उदाहरण (8) : इस अनन्त श्रेणी को देखें।

$$x^2+\frac{x^2}{1+x^2}+\frac{x^2}{(1+x^2)^2}+----$$

यह एक गुणोत्तर श्रेणी है जिसमें प्रथम पद x^2 है और सामान्य अनुपात $\frac{1}{(1+x^2)}$ है । अतः सूत्र (12) से

$$x^2+\frac{x^2}{(1+x^2)}+\frac{x^2}{(1+x^2)^2}+----=\frac{x^2}{1-(\frac{1}{1+x^2})}=1+x^2$$

अब $x=0$ लिया तो, 0+0+0+-----= 1+0

यानी 0= 1 (16)

उदाहरण (9) : इसी प्रकार अनन्त श्रेणी

$1-x+x^2-x^3+x^4-x^5+..............$

गुणोत्तर है, जिसमें $a=1$ और $r=-x$ है।

अतः सूत्र (12) से

$$1-x+x^2-x^3+x^4 \text{-----} = \frac{1}{1+x} \qquad (17)$$

यदि $\frac{1}{(1+x)}$ में सतत विभाजन (Continued division) करें या $(1+x)^{-1}$ में द्विपद प्रमेय (Binomial Theorem) लगायें, तब भी हमें परिणाम (17) प्राप्त हो जाता है।

इसमें यदि x का मान 1 लें तो हमें यह विचित्र फल मिलेगा

$$1-1+1-1+1-1+\text{--------} = \frac{1}{2} \qquad (18)$$

जिसको पश्चिम के अनेक बड़े-बड़े विद्वानों ने इस प्रकार लिखा था,

$(1-1)+(1-1)+(1-1)+\text{-------} = 1/2$

अर्थात् $0+0+0+0+\text{........} = 1/2$ (19)

समीकरण (18) में "शून्य" से "कुछ" प्राप्त करने की सिद्धि का आभास मिलता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कुछ लोग खाली हाथ दिखाकर छूमन्तर से अंगूठी बनाने का चमत्कार दिखाते हैं (creating something out of nothing)

समीकारण (18) को हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं

$1+(-1+1)+(-1+1)+(-1+1)+\text{-----} = 1/2$

अर्थात् $1+0+0+\text{....} = 1/2$

या $1 = 1/2$

एक अन्य विधि देखिए।

यदि $S = 1-1+1-1+1-1+\text{-----}$

तो $S = 1-(1-1+1-1+1\text{ ------})$

$= 1-S$

$2S = 1$ या $S = 1/2$

मानो ऐसा लगता है कि गणित से कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है।

उदाहरण (10) : हम जानते हैं कि

$$(\sqrt{a}) \times (\sqrt{b}) = +\sqrt{ab} \qquad (20)$$

जैसे $\sqrt{9} \times \sqrt{16} = \sqrt{144}$

जो कि सही है क्योंकि $\sqrt{9} \times \sqrt{16} = 3 \times 4 = 12$ और दाईं ओर से भी यही प्राप्त होगा (वर्गमूलों का मान सब जगह धन लेने पर)। काल्पनिक (imaginary) संख्याओं का गणित जानने वालों को मालूम है कि

$\sqrt{-1} = \pm i$, जहाँ $i = +\sqrt{-1}$ (21)

लेकिन यदि धन का चिह्न लें तो

$\sqrt{-4} = 2i$ (22)

अब (20) में a और b को −4 लेते हैं।

अतः $(\sqrt{-4}) \times (\sqrt{-4}) = +\sqrt{(-4)\times(-4)} = \sqrt{16}$ समीकरण (20) से

अर्थात् $(2i \times 2i) = 4$

यानी $4i^2 = 4$

अर्थात् $i^2 = +1$

लेकिन हम जानते हैं कि i^2 का मान −1 होता है. जो कि (21) का वर्ग लेने से भी स्पष्ट है।

उदाहरण (11) : हम जानते हैं कि

$\sqrt{a-b} = i\sqrt{b-a}$ (23)

क्योंकि $a - b = -(b - a)$ तथा $i = \sqrt{-1}$

इसी प्रकार $\sqrt{b-a} = i(\sqrt{a-b})$ (24)

अतः गुणा करने पर (23) और (24) से

$(\sqrt{a-b})(\sqrt{b-a}) = i^2 (\sqrt{b-a})(\sqrt{a-b})$

अर्थात् $i^2 = 1$ (क्योंकि $a \neq b$ मान लिया) लेकिन यह तो सही नहीं है।

i^2 का मान तो −1 होता है। बताओ भूल या दोष कहाँ है।
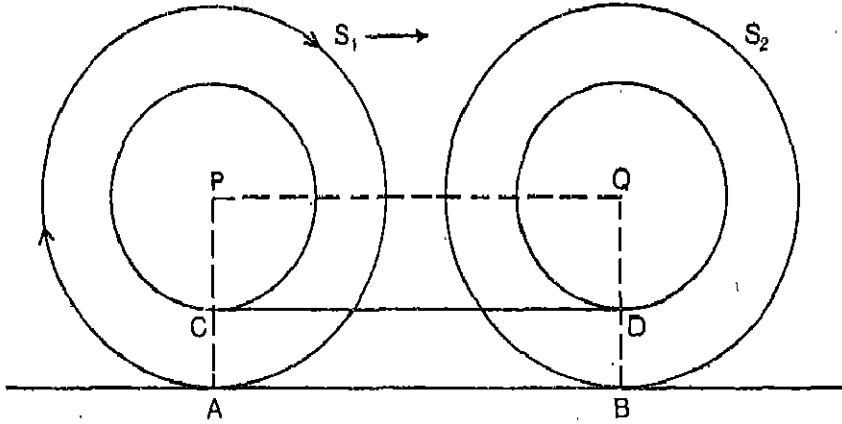
चित्र 1.1

ज्यामिति और त्रिकोणमिति

उदाहरण (12)

मान लो मोटर का पहिया सड़क पर लुढ़ककर एक चक्कर में S_1 स्थिति से S_2 स्थिति में पहुँचा। पहली स्थिति में टायर का जो बिंदु A सड़क के संपर्क में था, एक पूरा चक्कर लगाकर फिर सड़क के संपर्क में आ गया (बिंदु B के रूप में) और उसी के धातु के पहिए का बिंदु C भी एक चक्कर के बाद D पर आ गया। AB दूरी पहिए के बाहरी घेरे के बराबर होगी जिसकी त्रिज्या (radius) PA है।

यदि $PA = R$ हो तो $AB = 2\pi R$ होगा। चित्र से स्पष्ट है कि $CD = AB = 2\pi R$

अर्थात् C बिंदु ने भी वही दूरी $2\pi R$ तय की। लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता है, क्योंकि त्रिज्या PC का मान PA अर्थात् R से छोटा है। दूसरे शब्दों में AB बड़े वृत्त की और CD छोटे वृत्त की परिधि है, परन्तु चित्र से दोनों के मान बराबर हैं। फिर रहस्य क्या है?

उदाहरण (13) : त्रिकोणमिति में ऑयलर का सूत्र

$\left(e^{i\theta} = \cos\theta + i\sin\theta\right)$

प्रसिद्ध है। इसमें θ का मान 2π लें तो

$e^{2\pi i} = 1$

इसी प्रकार θ का मान 4π लेने पर, $e^{4\pi i} = 1$

अतः $e^{2\pi i} = e^{4\pi i}$

दोनों ओर का लागेरिथ्म (logarithm) लेने पर

$$2\pi i \log e = 4\pi i \log e \qquad (26)$$

यदि लागेरिथ्म का आधार e (जिसका मान 2.71828 के लगभग होता है) तो

$$\log_e e = 1$$

इसलिए $2\pi i = 4\pi i$

अर्थात् $2 = 4$

जो सर्वथा गलत है। पर यह हुआ क्यों और कैसे?

उदाहरण (14) : कोई त्रिभुज ABC में रेखा AD कोण A को दो बराबर भागों में बाँटती है, अर्थात् AD कोण ABC का अर्धक (bisector) है। अतः सर्वविदित प्रमेय से

$$\frac{BD}{DC} = \frac{AB}{AC}$$

अर्थात् $\frac{AB}{BD} = \frac{AC}{DC}$

या

$$\frac{\sin(B + A/2)}{\sin(A/2)} = \frac{\sin(C + A/2)}{\sin(A/2)}$$

यानी
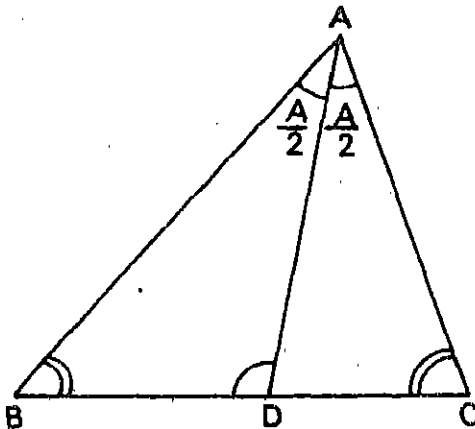
चित्र 1.2

sin (B+A/2) =sin (C+A/2)

अर्थात् $B+\frac{A}{2}=C+\frac{A}{2}$

यानी कोण B = कोण C

अर्थात् भुजा AB = भुजा AC

चित्र 1.3
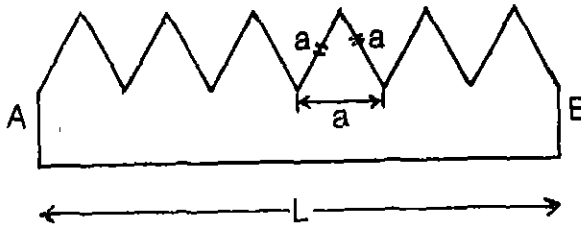
जिसका मतलब यह हुआ कि हम किसी भी त्रिभुज को समद्विबाहु (isosceles) सिद्ध कर सकते हैं। जी हाँ अवश्य, परन्तु धोखा देकर । धोखा कहाँ दिया गया बताइये?

उदाहरण (15) :

चित्र 1.4
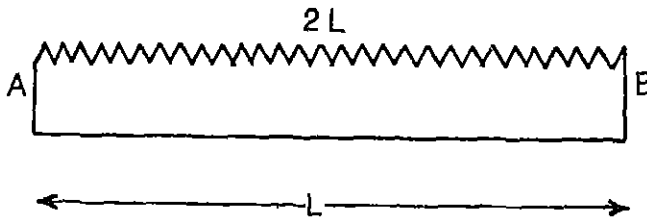
एक आरी (Saw) है। जिसकी लम्बाई AB का मान L है। मान लो n दाँते (teeth) हैं जिनमें से प्रत्येक की आकृति समबाहु (equi-lateral) त्रिभुज की दो पार्श्व (lateral) भुजाओं की तरह है। त्रिभुज की प्रत्येक भुजा की लम्बाई होगी L/n = a और इस प्रकार A से B तक की टेढ़ी-मेढ़ी (Zig-Zag) लकीर की लम्बाई होगी 2a x n = 2L

अर्थात् आरी के लम्बाई की दुगुनी। ध्यान देने की बात यह है कि यह दाँतों की संख्या n पर निर्भर नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि यदि हम दाँतों की संख्या बढ़ाते जाएँ तो दाँते छोटे-छोटे होते जाएँगे, परन्तु टेढ़ी-मेढ़ी लकीर की लम्बाई 2L ही रहेगी। लेकिन यदि n का मान बहुत ही बड़ा लें तो टेढ़ी-मेढ़ी लकीर और सीधी लकीर में बहुत ही कम व्यावहारिक अन्तर दिखेगा (चित्र 1.4 देखें)।

लेकिन एक की लम्बाई 2L और दूसरे की L है। इस प्रकार n का मानं असीमित (unlimited) करने पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीर सीधी लकीर जैसी हो जाएगी। लेकिन उसकी लम्बाई 2L होगी, जबकि होना चाहिए L, जोकि A और B के बीच की दूरी है।

विविध

उदाहरण (16): अवकलन या चलन कलन (differential calculus) पढ़ने वाले विद्यार्थियों को अच्छी तरह मालूम है कि, यदि

$y = x^n$, तो $\frac{dy}{dx} = nx^{n-1}$

जिससे x का अवकलन (derivative) 1 तथा x^2 का 2x होगा। अब इस पर विचार कीजिए।

$x + x + x + x + ...(x \text{ times}) = xx = x^2$

दोनों और अवकलन करने से

$1 + 1 + 1 + ... (x \text{ times}) = 2x$

अर्थात् $x = 2x$ या $1 = 2$

फिर वही चक्कर। क्या उच्चगणित से भी उसी प्रकार की गलत बातें सिद्ध की जाती हैं। जी हाँ, पर केवल मनोरंजन के लिए। सतर्क होने पर गलती पकड़ में आ जाएगी।

उदाहरण (17): जो विद्यार्थी समाकलन (integration) जानते हैं वे

$$x^n dx = \frac{x^{n+1}}{n+1}, n \neq 1$$

नियम से अवश्य परिचित होंगे । अब देखिए एक कमाल ऊपर के नियम से

$$\int \frac{dx}{x^2} = \int x^{-2}\, dx = -\frac{1}{x}$$

अत: $\int_{-1}^{1} \frac{dx}{x^2} = -\left[\frac{1}{x}\right]_{-1}^{1} = -\left[\frac{1}{1} + \frac{1}{1}\right] = -2$

लेकिन $\frac{1}{x^2}$ का मान तो कभी या कहीं भी ऋणात्मक (negative) नहीं है। फिर समाकलन का नतीजा -2 क्यों आया। उत्तर है, भूल करने से।

चित्र 1.5

उदाहरण (18): अब थोड़ा असमानताओं पर विचार कीजिए।

एक स्पष्ट असमता है कि संख्या 3, संख्या 2 से बड़ी है, अर्थात् 3>2।

दोनों और log (1/2) से गुणा करने पर
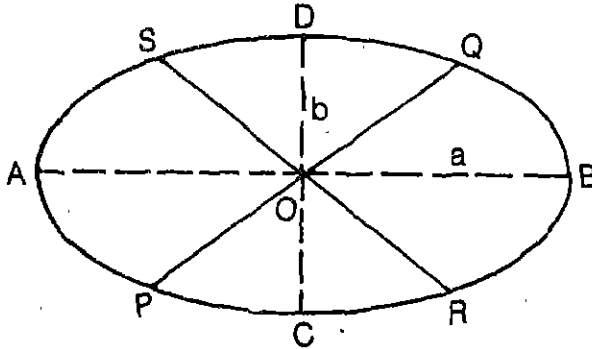
$3 \log (1/2) > 2 \log (1/2)$

अर्थात् $\log(½)^3 > \log(½)^2$

(क्योंकि $\log m^n = n \log m$)

अतः $(1/2)^3 > (1/2)^2$ अर्थात् $\frac{1}{8} > \frac{1}{4}$

परन्तु ऐसा है नहीं। आपकी बात ठीक है, लेकिन गलती बताओ तो बात बने।
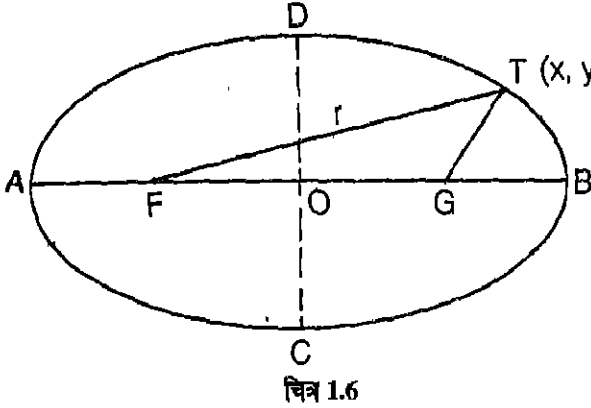
चित्र 1.6

उदाहरण (19): विश्लेषणात्मक (analytic) ज्यामिति पढ़ने वाले जानते हैं कि दीर्घ वृत्त (ellipse) में दो व्यास PQ तथा RS, संयुग्मी (conjugate) कहे जाते हैं, यदि वे एक दूसरे के समान्तर जीवाओं (chords) के अर्धक हों।

इसके लिये शर्त है कि

$$m_1 m_2 = -\frac{b^2}{a^2} \tag{27}$$

जहाँ m_1, m_2 व्यासों की प्रवणताएँ (slopes) हैं और 2a, 2b दीर्घवृत्त की बड़ी और छोटी अक्ष (axes) हैं।

अब परिभाषा के अनुसार, यह दोनों अक्ष AB, CD भी संयुग्मी हैं, तथा एक दूसरे पर लम्ब (perpendicular) भी जिसके कारण $m_1 \times m_2$ का मान इनके लिए -1 होगा।

अतः (27) से $-1 = -b^2/a^2$

अर्थात् $a^2 = b^2$, या $a=b$

अर्थात् हमने दीर्घवृत्त को वृत्त सिद्ध कर दिया, बेशक एक भूल करके। उसे बताइए।

उदाहरण (20) : किसी भी दीर्घवृत्त को वृत्त सिद्ध एक अन्य विधि से भी कर सकते हैं। यदि आपको अधिकतम और न्यूनतम मान निकालना अवकलन (calculus) से आता हो। किसी भी बिंदु T (x,y) के लिए नाभीय (focal) दूरी, TF, (a+ex)

होती है जहाँ e दीर्घवृत्त की उत्केन्द्रता है। यदि

$r = a+ex,$

तो $\frac{dr}{dx} = e$ (जो एक स्थिर राशि है)

अर्थात् $\frac{dr}{dx} \neq 0$

जिसका मतलब यह हुआ कि r का मान न तो अधिकतम है और न ही न्यूनतम। अतः वह केवल वृत्त ही हो सकता है।

अध्याय 2

औसत निकालने का विश्वव्यापी चलन

शिक्षा-संस्थाओं में गर्मियों की छुट्टियाँ चल रही थीं। एक नवयुवक शहर में सांख्यिकी (Statistics) के पाठ्यक्रम को पूरा करके अभी थोड़े ही दिन पहले ग्राम स्थित अपने घर लौटा था। ऐसे लड़के जो उच्च्य शिक्षा पाए हों, गांव में कम थे। इसलिए विवाह योग्य वर की तलाश में आने वाले लोगों की नजर में वह नवयुवक काफी उपयुक्त समझा जाता था। प्रस्तावों की कोई कमी नहीं थी। अन्त में नवयुतक के अनपढ़ बूढ़े पिता ने उसकी शादी थोड़ी-सी दूर पर स्थित एक गांव के परिवार में तय कर दी। उन दो गांवों के बीच में एक छोटी नदी थी।

विवाह का दिन आया। नवयुवक दूल्हे के साथ बारात ने प्रस्थान किया। बारातियों में अधिकतर अनपढ़ थे। गर्मियों में नदी में पानी कम होने से लोग उसे पैदल ही पार कर लेते थे। लेकिन उस दिन नदी में पानी का जलस्तर ज्यादा था। पिछली रात को ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र में यकायक पानी बरसने के कारण शायद ऐसा हुआ था। बाराती पैदल चलकर नदी पार करने में झिझक रहे थे। अतः बारात वहीं, नदी किनारे रुक गई।

वास्तव में नदी में पानी की गहराई सब स्थानों पर एक-सी नहीं थी। उसे पैदल पार

करने में खतरा था, क्योंकि बाराती भी तो सभी लम्बे कद के नहीं थे। समस्या यह थी कि इस बात का कैसे पता लगे कि उस समय नदी पार करना सुरक्षित है या नहीं।

लेकिन दूल्हा तो सांख्यिकी पढ़ा-लिखा था। उस विषय में, किसी प्रमाण कि विभिन्न मान होने पर उनके औसत (average) को प्रतिनिधि के रूप में प्रयोग करने की जो शिक्षा दी जाती है, आखिर वह कब काम आती। इसलिए बारात में सम्मिलित सभी लोगों की उसने (दूल्हे ने) ऊँचाई का औसत निकाला, और नदी के विभिन्न स्थलों की गहराई लेकर उसका भी औसत निकाला।

चूंकि बारात की औसत ऊँचाई नदी की औसत गहराई से अधिक आई, उस पढ़े-लिखे दूल्हे ने बारात के नदी पार करने में कोई खतरा न समझा। अतः उसने घोषणा की कि नदी पार करना बिल्कुल सुरक्षित है।

लोग तो किसी सुरक्षित उपाय का उत्सुकता से इन्तजार कर ही रहे थे। जब आधुनिक शिक्षा प्राप्त किए दूल्हे ने सुरक्षा का पता गणना द्वारा लगा ही लिया, तो फिर खतरा किस बात का।

उधर विवाह का शुभमुहूर्त भी निकट आता जा रहा था। अतः बाराती नदी पार जाने को तैयार हो गए, और आदेश मिलते ही उसे पैदल पार करने लगे।

उसके बाद क्या हुआ, यह तो पता नहीं। लेकिन सामान्य बुद्धिवाले लोग भी परिणाम का अनुमान लगा सकते हैं।

सांख्यिकी-सिद्धांत के दुरूपयोग का यह एक "नीम हकीम खतरेजान" वाला उदाहरण है। जिन लोगों को सांख्यिकी के ऐतिहासिक विकास की जानकारी है, उनको याद होगा कि उस विषय के ज्ञान का दुरूपयोग या खतरनाक इस्तेमाल भी बहुत हुआ है और आज भी हो रहा है।

कुछ भी हो, औसत निकालने की विधि और औसत (average) को प्रयोग करने की प्रथा बहुत प्राचीन है और विश्व की सभी सभ्यताओं में इसका चलन था।

इस अध्याय में तत्सम्बन्धित कुछ रोचक बातों का वर्णन किया गया है। लेकिन पहले हम एक बात स्पष्ट कर दें। कभी-कभी औसत का प्रयोग केवल एक गणितीय भाषा के रूप में किया जाता है, क्योंकि नियम या सूत्र की स्थिति के अनुसार ऐसा करना

सुविधाजनक होता है। लेकिन इन परिस्थितियों में भी औसत का प्रयोग हमको सूत्र या नियम की अन्तर्दृष्टि देता है।

उदाहरण (Examples)

(i) समान्तर श्रेणी का योगफल

$(a+l) \times \frac{n}{2}$

= (प्रथम और अंतिम पदों का औसत) x (पदों की संख्या)

(ii) समलम्ब चतुर्भुज (Trapezium) का क्षेत्रफल

= (समान्तर भुजाओं का औसत) x (उनकी आपसी दूरी)

(iii) वलयाकार पट्टी (annulus) का क्षेत्रफल

$\pi R^2 - \pi r^2 = (R+r) x d$

= (अन्तः और बाह्य वृत्तों की परिधियों का औसत) x (पट्टी की चौड़ाई)

(iv) एक समान या स्थिर त्वरण (acceleration) से चलने वाले कण द्वारा तय की गई दूरी $s=\frac{1}{2}(u+v).t$

= प्रारम्भिक तथा अंतिम गतियों का औसत x समय

अब माना कि त्वरण यानी वेग वृद्धि स्थिर व धनात्मक है। यदि हम प्रारम्भिक गति से दूरी का हिसाब लगायेंगे, तो वह वास्तविक दूरी से कम आएगी, क्योंकि वेग तो बढ़ता जाता है। और यदि विचाराधीन यात्रा के अन्त की गति v से दूरी का मान निकालते हैं तो वह सही मान से अधिक आएगा क्योंकि v गति होने के पहले उसका वेग कम था।

इसलिए यह एक रोचक बात है कि उन दो गतियों का औसत लेकर जो दूरी सरलता से (यानी यात्रा समय का गुणा करके) निकाली गई, वह एकदम ठीक मान है, ऐसा सिद्ध किया जा सकता है। सब तरह की त्वरित गतियों में ऐसा नहीं होता।
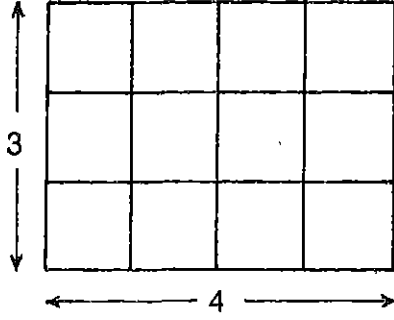
चित्र 2.1

चित्र 2.2

चित्र 2.3

समतल आकृतियों के क्षेत्रफल

आयताकार क्षेत्र को इकाई वर्गों में विभाजित करके उसके क्षेत्रफल के लिए सूत्र

$$A = \text{लम्बाई} \times \text{चौड़ाई} \qquad (1)$$

निकालना अति प्राचीन काल में भी आसान रहा होगा।

इसके बाद त्रिभुज तथा समानान्तर चतुर्भुज आकृतियों के क्षेत्रफल तत्संबंधित आयताकार क्षेत्रों (चित्र 2.2 और 2.3) के आधार पर विचार-विमर्श करके धीरे-धीरे प्राप्त कर लिए गए होंगे। व्यापक त्रिभुज के पहले समकोण त्रिभुज और द्विसमबाहु त्रिभुज पर विचार करना स्वाभाविक था।
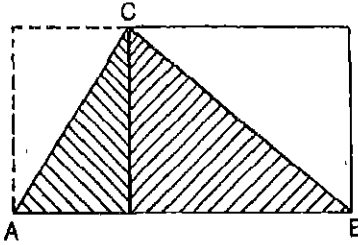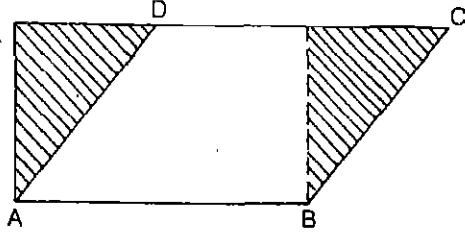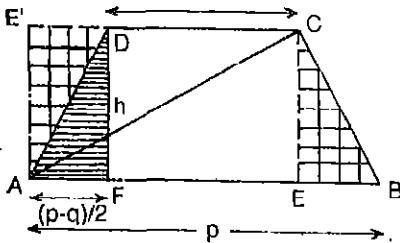
चित्र 2.4

समलम्ब चतुर्भुजों (trapezia) में द्विसमलम्ब चतुर्भुज की माप कठिन नहीं थी।

उसके लिए सूत्र था, (चित्र 2.4 देखें)

$$A = \frac{1}{2}(p+q) \times h \qquad (2)$$

संभव है कि इस सूत्र की प्राप्ति समलम्ब

चतुर्भुज ABCD को आयत AECE' के समान देखने से की गई हो, जैसा कि चित्र 2.4 से स्पष्ट है (जिसमें त्रिभुज CEB और AE'D बराबर है) इस प्रकार

$$A = qh + \left(\frac{p-q}{2}\right) h \tag{3}$$

एक और सरल विधि आकृति ABCD को कर्ण AC द्वारा दो त्रिभुजों, ABC और CDA में विभाजित करता है।

तब, $$A = \frac{1}{2}ph + \frac{1}{2}qh \tag{4}$$

जिससे वही सूत्र प्राप्त हो जाता है।

इस सरल विधि के आचरण से तो व्यापक समलम्ब चतुर्भुज (trapezium) का क्षेत्रफल पाने में कोई कठिनाई नहीं है। क्योंकि नियम (4) उस पर भी हूबहू लागू होता है। हाँ, यदि इस व्यापक समलम्ब चतुर्भुज को समानान्तर चतुर्भुज ADCC' तथा त्रिभुज BCC' में विभाजित करें (चित्र 2.5) तो उसके लिए नियम (3) लागू हो जाएगा। कुछ भी हो, सूत्र (2) सब समलम्ब चतुर्भुजों के लिए है। उसमें समानान्तर भुजाओं का औसत स्वाभाविक रूप में आ गया है।

और आगे बढ़ने में एक समस्या है। वह है किसी भी व्यापक चतुर्भुज के क्षेत्रफल निकालने की। क्योंकि ऊपर के तरीके यहाँ आसानी से लागू नहीं होते। लगभग 5000 वर्ष पूर्व के गणितज्ञों के सामने तो अवश्य ही एक बड़ी विकट समस्या थी। उदाहरण के लिए एक चतुर्भुजीय खेत या भूखंड का वास्तविक क्षेत्रफल कैसे मालूम किया जाए। लगान और कर वसूली करने वाले राजकीय पदाधिकारियों के लिए यह जानना जरूरी था।
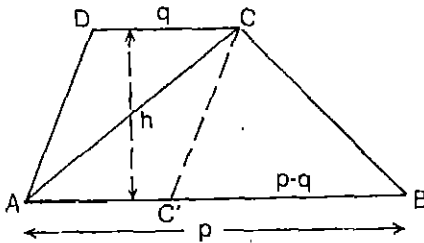
चित्र 2.5

उस समय इस समस्या का हल इस प्रकार किया गया। मान लो चतुर्भुज की भुजाओं के मान, जिन्हें सर्वेक्षण या

वास्तविक माप से मालूम किया गया हो (चित्र 2.6) a,b,c,d हैं। तो चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए निम्नलिखित नियम, जिसे 'सर्वेक्षक सूत्र' कहते हैं, का प्रयोग किया गया।—

$$A = \left(\frac{a+c}{2}\right) \times \left(\frac{b+d}{2}\right) \qquad (5)$$

चित्र 2.6
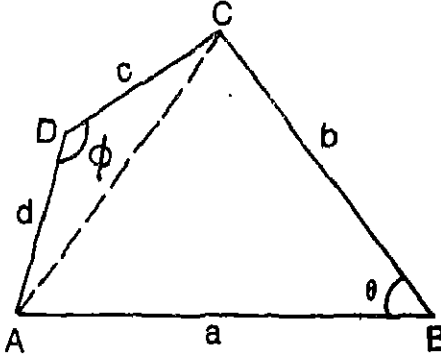
यह सूत्र गणितीय दृष्टि से सही नहीं है और न सामान्यतया सूक्ष्म। फिर भी 5000 वर्ष पुराने काल का यह प्रयास सराहनीय है, और इसका बहुत ही ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि वह संसार की लगभग सभी सभ्यताओं में प्रयोग किया गया। और यह प्रयोग बाद में सूक्ष्म सूत्र मालूम होने के बाद भी चलता रहा। सच तो यह है कि प्रायः आज भी गांव में चतुर्भुज खेतों और भूखण्डों के क्षेत्रफल को सरलता और शीघ्रता से मालूम करने के लिए उसका उपयोग किया जाता है।

'सर्वेक्षक सूत्र' (5) के प्राचीन काल में उपयोग में लाए जाने के कुछ संदर्भ इस प्रकार हैं-

1. सुमेरिया (ई. पू. तृतीय सहस्राब्दी)
2. मेसोपोटामिया (ई. पू. द्वितीय सहस्राब्दी)
3. मिस्र में नील नदी के किनारे बसे इडफू (Id fu or Edfu) स्थान पर बने होरस (Horus) के मंदिर के अभिलेख।

इनका समय ई. पू. प्रथम शताब्दी है, और हल किए अनेक उदाहरण में से दो इस प्रकार थे-

पहला,

$a=22, b=4, c=23, d=4$

और दूसरा,

a=5, b=20, c=8, d=15

4. चीन का एक ग्रन्थ *वूत्शाओ सुआन चिंग* (Wu Tshao Suan Ching) जिसका संग्रह सरकारी विभागों के लिए ई. चतुर्थ शताब्दी में किया गया। खेत की पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी तथा उत्तरी भुजायें 35, 45, 25 और 15 पाद (paces) थीं, और उत्तर 800 था।
5. भारत में सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त (ई 628) कृत *ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त* (XII- 21) जहाँ नियम इन शब्दों में दिया गया है–

   "स्थूलफलं त्रिचतुर्भुज-बाहुप्रतिबाहु योगदल-घातः" अर्थात्

   "त्रिभुज और चतुर्भुज का स्थूल क्षेत्रफल आमने-सामने की भुजाओं के योग के आधों का गुणनफल होता है।"

इसमें अनेक बातें कही गई हैं। पहली तो यह है कि इस नियम से समान्यतया स्थूल (rough या approximate) क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यह बात स्पष्ट रूप से शायद ब्रह्मगुप्त के पूर्व किसी अन्य विद्वान ने नहीं कही।

वास्तव में स्थिति और भी खराब है। क्योंकि कोई चतुर्भुज भुजाओं मात्र से निर्धारित नहीं होता अर्थात् अनन्य नहीं है। सच पूछो तो दी हुई चार भुजाओं से जितने चाहो उतने चतुर्भुज बन सकते हैं। इसकी सच्चाई देखने के लिए चार भुजाओं के बराबर लम्बाई की चार पतली छड़ें लेकर उनको कब्जों से आपस में जोड़ें। बनी हुई चार कड़ियों की माला की आकृति मनमाने अनेक रूप लेने में समर्थ होगी। इसलिए दी हुई केवल चार भुजाओं से चतुर्भुज के क्षेत्रफल की बात करना कोई अर्थ नहीं रखता।

आर्यभट द्वितीय ने तो अपने *महासिद्धांत* (XV, 70) में यहाँ तक कह दिया कि-

कर्णज्ञानेन बिना चतुरश्रे लम्बकं फलं यद्वा ।
वक्तुं, वाञ्छति गणकोयोऽसौ . मूर्खः पिशाचो वा ॥

अर्थात्

'जो गणितज्ञ चतुर्भुज के किसी कर्ण के जाने बिना (केवल उसकी भुजाओं से) उसके क्षेत्रफल या अवलम्ब (altitude) को बताने की कामना करता है वह या तो मूर्ख है या पिशाच।'

लेकिन इस सिद्धांत से खेतों और भूखंडों के क्षेत्रफल पाने के लिए कोई व्यावहारिक कठिनाई नहीं है, क्योंकि वहाँ तो आकृति निर्धारित है। प्रश्न केवल यह है कि चार भुजाएँ नापकर क्षेत्रफल कैसे पाएँ।

ब्रह्मगुप्त ने दूसरी बात यह कही कि उक्त नियम (5) से त्रिभुज का भी स्थूल क्षेत्रफल निकाला जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि त्रिभुज को ऐसा चतुर्भुज समझो जिसकी एक भुजा शून्य है। लेकिन ऐसा, ब्रह्मगुप्त के 700 वर्ष पूर्व इडफू के अन्तर्लेखों में किया जा चुका था, जिसमें 5, 17, 17 भुजाओं वाले त्रिभुज को 5, 17, 0, 17 भुजाओं वाला चतुर्भुज लेकर उसका क्षेत्रफल सूत्र (5) से
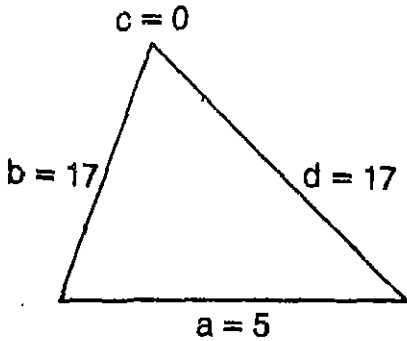
$$\left(\frac{5+0}{2}\right) \times \left(\frac{17+17}{2}\right) = 42\frac{1}{2}$$ निकाला गया।

चित्र 2.7

त्रिभुज के लिए सूत्र (5) का उपयोग यूनानी गणितज्ञ हीरॉन (ई. पू. प्रथम शताब्दी) ने भी किया जिसे त्रिभुज के क्षेत्रफल का सही नियम भी मालूम था, जो इस प्रकार है।

$$A = \sqrt{s(s-a)(s-b)(s-c)} \qquad (6)$$

जहाँ $s = (a+b+c)/2$ (7)

प्राचीन रोमन लोगों का गणितीय स्तर इतना कम था कि समबाहु त्रिभुज के लिए भी उन्होंने स्थूल सूत्र (5) लगाया। आश्चर्य की बात है कि इन स्थूल रीतियों का उपयोग जर्मनी और रूस में काफी बाद तक होता रहा।

दूसरी विचित्र बात यह है कि यदि सूत्र (5) को a, b, c भुजाओं वाले त्रिभुज पर

लगाया जाता है तो हमें क्षेत्रफल के तीन अलग-अलग मान भी मिल सकते हैं।

$$A_1 = (a/2).(b+c)/2 \quad (8)$$

$$A_2 = (b/2).(c+a)/2 \quad (9)$$

$$A_3 = (c/2).(a+b)/2 \quad (10)$$

यहाँ चौथी 0 भुजा क्रमशः a, b, c के सन्मुख ली गई है। लगता है कि किसी प्राचीन या मध्ययुगीय लेखक ने इस दोष का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया कि एक त्रिभुज के क्षेत्रफल के तीन मान कैसे हो सकते हैं। लेकिन भारत में *श्रीधरीयपाटी* के एक प्राचीन टीकाकार ने (5) का एक बड़ा रोचक दोष बताया है। वह यह कि अक्षेत्र (यानी ऐसा "त्रिभुज" या "चतुर्भुज" जिसका अस्तित्व ही नहीं हो) के लिए भी सूत्र (5) से क्षेत्रफल मिल जाता है। उदाहरण के लिये "त्रिभुज" की भुजाएँ 20, 13, 7 लीजिए [सूत्र (8) से, जो (5) का ही एक रूप है, "त्रिभुज" का क्षेत्रफल] (20/2) . (13+7)/2 = 100 आया। जबकि सही सूत्र (6) से उसका क्षेत्रफल शून्य आएगा, क्योंकि $s = 20$; $(s-a) = 0$

इस त्रिभुज का चित्र खींचिए।

सच पूछो तो 20, 13, 7 से कोई वास्तविक त्रिभुज नहीं बनता। जिसके लिये आवश्यक शर्त यह है कि s का मान प्रत्येक भुजा से ज्यादा हो। दूसरे शब्दों में, त्रिभुज या चतुर्भुज में प्रत्येक भुजा का मान अन्य भुजाओं के योगफल से कम होना चाहिये।

एक अन्य मजेदार बात सूत्र (5) के बारे में यह है कि इससे निकाला गया क्षेत्रफल का मान वास्तविक यानी सही मान से *सदैव ज्यादा* आता है (आयत छोड़कर)।
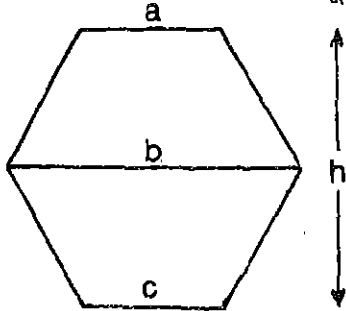
चित्र 2.8

इसको इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है (चित्र 2.8 में) त्रिभुज ABC का क्षेत्रफल, $\Delta_1 = \frac{1}{2} ab \sin\theta < \frac{1}{2} ab$

और त्रिभुज ACD का क्षेत्रफल, $\Delta_2 = \frac{1}{2} cd \sin\phi < \frac{1}{2} cd$

अतः चतुर्भुज का क्षेत्रफल, $S = \Delta_1 + \Delta_2 < \frac{1}{2}(ab + cd)$
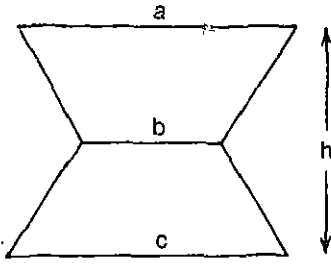
चित्र 2.9

इसी प्रकार चतुर्भुज को कर्ण BD द्वारा दो त्रिभुजों में विभाजित करके हम दिखा सकते हैं कि $S<\frac{1}{2}(bc+cd)$ । अतः जोड़ने पर, $2S < 1/2\,(ad + bc + ab + cd)$ यानी, $S < (a + c)(b + d) / 4$

$\therefore \left(\frac{a+c}{2}\right)\cdot\left(\frac{b+c}{2}\right) >$ वास्तविक क्षेत्रफल।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन मिस्र देश के पदाधिकारी सूत्र(5) के आधार पर क्षेत्रफल निकालकर लगान और कर वसूली में वहाँ के किसानों का शोषण करते थे ।

चित्र 2.8 या 2.9 में बने नगाड़े के ऊर्ध्व खण्ड या काट (Section) के क्षेत्रफल के लिये चीन में *वूत्शाओ सुआन चिंग* (Wu Tshao Suan Ching) ग्रन्थ में सूत्र इस प्रकार है–

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{1}{3}(a+b+c)h \qquad (11)$$

स्पष्ट रूप से यह *a,b,c* का औसत लेकर प्रभावकारी (effective) लम्बाई निकालने के प्रयत्न पर निर्भर है। लेकिन सूत्र सही नहीं है। सही सूत्र ऊपर और नीचे के दोनों समलम्ब चतुर्भुजों का अलग-अलग क्षेत्रफल का योग लेने से प्राप्त होगा। अर्थात्

$$\text{सही क्षेत्रफल} = \left(\frac{a+b}{2}\right)\cdot\frac{h}{2}+\left(\frac{b+c}{2}\right)\cdot\frac{h}{2}$$

$$=\frac{(a+2b+c)\cdot h}{4} \qquad (12)$$

इसका प्राप्त करना ई. चौथी शताब्दी चीन में कठिन नहीं था। लेकिन मालूम पड़ता है कि सीधे औसत लेकर सरल सूत्र निकालना उन्हें ज्यादा रुचिकर लगा। आसानी औसत का एक बड़ा लुभावना गुण है जिसके कारण लोग सूक्ष्मता को भी भूल जाते हैं। विवश होकर औसत का सहारा लेना अलग बात है।

वृत्त की दो समानान्तर (केन्द्र से एक ही तरफ) जीवाओं के बीच बने वृत्तखण्ड के क्षेत्रफल पर विचार करते हैं। विकसित त्रिकोणमिति के प्रयोग के बिना उसका क्षेत्रफल का सही मान निकालना कठिन है। जिनभद्र गणी ने ई. सन् 600 के आसपास निम्नलिखित दो व्यावहारिक सूत्र दिये हैं।

(i) क्षेत्रफल $= \frac{1}{2}(a+b).d$ (13)
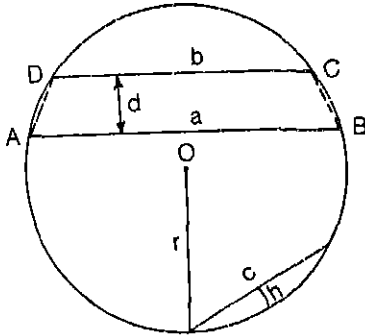
चित्र 2.10

(ii) क्षेत्रफल $= \sqrt{\frac{1}{2}(a^2+b^2)}\,.d$ (14)

सही यानी शुद्ध कोई नहीं है, और स्पष्ट है कि दोनों ही औसत विधि पर आधारित हैं।

सूत्र (i) ज्यामितीय दृष्टि से वृत्तखंड को समलम्ब चतुर्भुज ABCD के समान मान लेने से भी लिखा जा सकता है।

दूसरा सूत्र अधिक अच्छा है और इसी को जिनभद्र ने प्राथमिकता दी है। इसकी रहस्यमय उपपत्ति प्राचीन काल से ज्ञात सूत्र $C^2 = 4h\,(2r - h)$ पर आधारित है।

2a बड़ी और 2b छोटी अक्ष वाले दीर्घ वृत्त (ellipse) के लिये एक प्राचीन सूत्र

क्षेत्रफल $= \pi\left(\frac{a+b}{2}\right)^2$ (15)

का आधार भी औसत की क्रिया है। यदि M बिंदु C और A के ठीक मध्य में हो, तो $OM = (a+b)/2$ होगा। इसको त्रिज्या मान कर खींचे गये वृत्त के क्षेत्रफल को दीर्घ वृत्त के क्षेत्रफल के समान समझना सूत्र (15) में निहित है।

औसत लेकर एक अन्य सरल सूत्र भी हो सकता है

क्षेत्रफल $= \pi\left(\frac{a^2+b^2}{2}\right)$ (16)
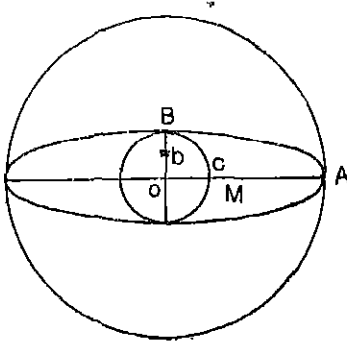
चित्र 2.11

जिसका मतलब है चित्र में बने सबसे छोटे और सबसे बड़े वृत्तों के क्षेत्र-मानों के औसत को दीर्घ वृत्त के क्षेत्रफल के बराबर मान लेना है। शुद्ध सूत्र है,

क्षेत्रफल $= \pi ab$ (17)

इसे लंब प्रक्षेप (orthographic projection) द्वारा बड़ी सरलता से सिद्ध किया जा सकता है। बेलन (cylinder) का व्यास 2b है, और तिरछी रेखा $PT = 2a$; इस प्रकार तिरछे तल के झुकाव के लिये

$$\cos\theta = PQ/PT = b/a$$

बेलन का तिरछे खंड या काट (Oblique section) दीर्घवृत्त है, और क्षैतिज तल पर उसका लंब प्रक्षेप वृत्त है। यदि दीर्घवृत का क्षेत्रफल A हो तो,

$$A \cdot \cos\theta = \pi b^2$$

जिसमें $\cos\theta$ का मान बैठाने से सूत्र (17) आ जायेगा। दीर्घवृत्त की परिधि के लिये केपलर (Kepler 1609 ई०) ने औसत लगाकर

$$p = \frac{2\pi a + 2\pi b}{2} = \pi(a+b)$$
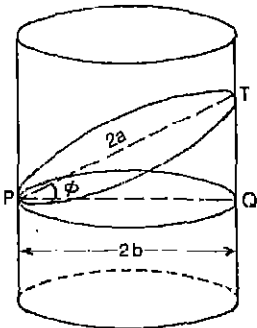
निकाला। सही मान कठिन आधुनिक अवकलन से ही निकलता है और वह भी उच्च फलन या अनन्त श्रेणी में।

चित्र 2.12

वृत्त की परिधि को उसमें बने सबसे बड़े षड्भुज की परिधि के बराबर ले लेने पर

$2\pi r = 6r$ अर्थात्, $\pi = 3$ स्थूल मान आता है, जिसमें वृत्त का क्षेत्रफल

$$A = 3r^2 \quad (18)$$

वैसे इस स्थूल सूत्र को कुछ विद्वानों ने औसत की
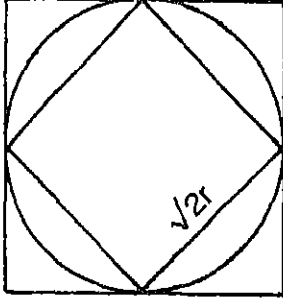
चित्र 2.13

विधि से प्राप्त करना ज्यादा अच्छा समझा है जो प्राचीन काल के लिए एक स्वाभाविक कल्पना है।

वृत्त से स्पर्श करते हुए उसके बाहर और भीतर बने एक केन्द्रित वर्गों का क्षेत्रफल क्रमशः $4r^2$ तथा $2r^2$ होगा। इनका औसत लेने पर $A = (4r^2 + 2r^2)/2 = 3r^2$.

आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि ठीक इसी विधि से जर्मनी के एक (अव्यवसायी) गणितज्ञ ने $\pi=3$ को सन् 1840 में *प्राप्त किया जबकि दुनिया इस विषय में बहुत आगे निकल* चुकी थी। π के कुछ अन्य प्राचीन मान जैसे $\sqrt{10}$, 355/115 इत्यादि, औसत लगाकर भी निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि चित्र 2.13 में बड़े वर्ग का क्षेत्रफल S_1 हो और अन्दर के छोटे वर्ग का क्षेत्रफल S_2 हो, तो वृत्त के क्षेत्रफल A के लिये हम वर्गों के औसत का मूल (root mean square) लगाते हैं, अर्थात्

$$A^2 = (S_1^2 + S_2^2) / 2$$

इससे $\pi^2 r^4 = (16r^4 + 4r^4) / 2$

यानी $\pi = \sqrt{10}$

प्राप्त हो जाता है। यह स्थूल मान जैन ग्रन्थों में प्रचुरता से मिलता है।

वक्र पृष्ठ और आयतन

मिस्रीय (Egyptian) गणित की प्रसिद्ध पुस्तक *आहमोस पैपिरस* का उल्लेख हम कर चुके हैं। उस विषय की, परन्तु उससे भी पुरानी है एक दूसरी पैपिरस जिसे *मास्को गणितीय पैपिरस* (ई० पू० लगभग 1830) कहते हैं। उसमें एक प्रश्न एक ऐसी टोकरी का वक्र पृष्ठ निकालने पर है जिसकी आकृति गोलार्ध थी या कपाल से मिलती-जुलती है। कुछ विद्वानों की राय में उस समय के मिस्रवासियों को गोलार्ध के वक्र पृष्ठ का सही सूत्र मालूम

था जो इस प्रकार है।

$S=2\pi r^2$

लेकिन इस मत को मानना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि इतने अतीत काल में अर्धगोलीय पृष्ठ के शुद्ध सूत्र का ज्ञान अविश्वसनीय लगता है। लेकिन हो सकता है कि मिस्रवासियों ने सूत्र (19) की प्राप्ति औसत की किसी सरल विधि से की हो। उस स्थिति में न आश्चर्य की जरूरत है और न अविश्वास की। एक प्राचीन गणित के इतिहास ने सूत्र (19) को प्राप्त करने की यह रीति सुझाई है।

चित्र 2.14 में आधार (base) वृत्त का क्षेत्रफल πr^2 है और परिगत (Circumscribed) बेलनाकार टोपी का क्षेत्रफल
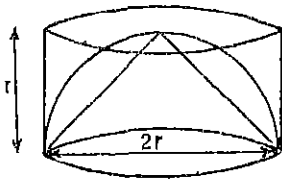
चित्र 2.14

$= $ उसका वक्र पृष्ठ + ऊपरी सतह

$= 2\pi r.r+\pi r^2=3\pi r^2$

आधार वृत्त और टोपी की सतह का औसत लेने से, गोलार्ध के वक्र पृष्ठ और आधार वृत्त का

क्षेत्रफल $= \dfrac{\pi r^2+3\pi r^2}{2}=2\pi r^2$

और यही शुद्ध मान है।

इस प्रकार हो सकता है कि लगभग 4000 वर्ष पूर्व मिस्रीय लोगों ने इसी रीति से सूत्र (19) प्राप्त किया हो। उसमें कोई उच्च गणितीय क्षमता का होना जरूरी नहीं है।

रोचक बात तो यह है कि इसी तरह के अन्य सरल औसत से ठोस गोलार्ध के आयतन का भी शुद्ध सूत्र मिल जाता है। मिस्र पिरामिडों का देश कहलाता है। वास्तव में पिरामिड उनकी संस्कृति के एक अभिन्न अंग थे। उन पर उनको ध्यान देना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी था। परिणाम यह हुआ कि आज से 5000 वर्ष पहले ही उन्हें वर्गाकार पिरामिडों के छिन्नक (frustum) के आयतन का भी सही सूत्र ज्ञात था। तो फिर वर्गाकार सूची स्तम्भ और शंकु के आयतनों में कठिनाई की कोई बात ही नहीं।

गोलार्ध के परिगत बेलन का आयतन πr^3 और अन्तर्गत शंकु का आयतन $=\frac{1}{3}\pi r^3$

इनका औसत होगा $= \frac{2\pi r^3}{3}$

जोकि गोलार्ध के आयतन का शुद्धमान है। दैवयोग से फिर भाग्य ने साथ दे दिया।

मनोरंजक बात तो यह है कि गोले के आयतन के लिये प्रचलित एक प्राचीन स्थूल सूत्र की प्राप्ति भी इसी तरह हो जाती है, यदि शंकु के शुद्धमान के स्थान पर इसके स्थूल मान का प्रयोग किया जाए। शंकु के आयतन के लिये एक बहुत ही स्थूल (या गलत) सूत्र था

$$V = \left(\frac{1}{2}\right) \pi r^2 h \qquad (20)$$

ई. 12वीं सदी के मैमोनिडेस (Maimonides) ने उन लोगों का उल्लेख किया है जो सूत्र (20) पर विश्वास करते थे। भारत में आर्यभट प्रथम ने भी त्रिभुजाकार सूची स्तंभ के आयतन के लिए (1/2)Ah सूत्र दिया है, जबकि सही सूत्र (1/3) Ah है। यहाँ A= आधार का क्षेत्रफल।

इसको लगाकर यदि अन्तर्गत शंकु और परिगत बेलन के आयतनों का औसत होगा,

$$\frac{1}{2}\left(\pi \frac{1}{2} r^3 + \pi r^3\right) = \left(\frac{3}{4}\right) \pi r^3$$

जो कि गोलार्ध के आयतन के लिए एक स्थूल सूत्र है। अब यदि π का भी स्थूल मान 3 लिया जाए तो पूरे गोले के आयतन के लिए हमें

$$V' = \frac{9}{2} r^3 \qquad (21)$$

स्थूल सूत्र प्राप्त होता है।

रोचक बात तो यह है कि चीन के ई. प्रथम शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रन्थ *च्यू चांग सुआन शू* (Chiu Chang Suan Shu) में सूत्र (21) का प्रयोग हुआ है। भारत में भी इसका उल्लेख भास्कर प्रथम (सन् 629) ने किया है। जैन गणित में तो यह बहुत लोकप्रिय था जैसा कि महावीर, नेमिचंद्र और ठक्कुर फेरू के ग्रन्थों से पता चलता है।

अब हम छिन्नकों और उनसे मिलते-जुलते ठोसों के आयतनों की चर्चा करते हैं। पहले
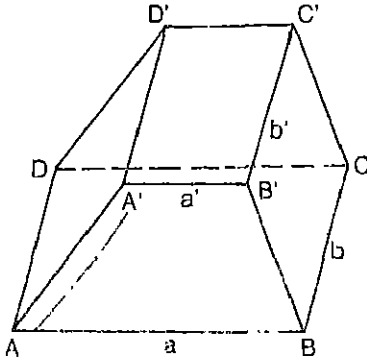
चित्र 2.15

एक ऐसे ठोस पर ध्यान दें जिसका आधार, ABCD एक आयत (भुजाएँ a,b) है और शिखर A'B'C'D' एक समानान्तर आयत (भुजाएँ a', b') है। साथ ही ऊपर नीचे की भुजाएँ क्रमशः एक दूसरे के समानान्तर हैं, तथा जिसके चारों फलकों (ABB'A' इत्यादि) की आकृति समलम्ब चतुर्भुज होगी। माना कि ठोस की खड़ी ऊँचाई आर्थात् आधार और शिखर के बीच की कम से कम दूरी h है। आयतन के निम्नलिखित दो प्राचीन नियम औसत पर आधारित हैं।

$$V_1 = \frac{1}{2}\left[ab + a'b'\right].h \qquad (22)$$

और $$V_2 = \frac{1}{2}(a+a').\frac{1}{2}(b+b').h \qquad (23)$$

प्रसिद्ध भारतीय गणित इतिहासज्ञ विभूति भूषण दत्त (जो संन्यास के बाद स्वामी विद्यारण्य कहलाये) के अनुसार सूत्र 23 का उपयोग शुल्बसूत्रों में किया गया था। वर्गाकार छिन्नक के लिये दोनों ही सूत्र बेबिलोन में प्रयोग किए गए।
शंकु के छिन्नक के लिये उपर्युक्त सूत्र निम्न रूप धारण करेंगे।

$$V_1 = (\pi/2)\,(r_1^2 + r_2^2).h \qquad (24)$$

$$V_2 = (\pi/4)\,(r_1 + r_2)^2.h \qquad (25)$$

सूत्र (24) से मिलते-जुलते नियम का उपयोग बेबिलोनियन गणित में और (25) का बाद के चीनीय गणित में, π का मान 3 लेकर। यूनानी गणितज्ञ हीरॉन ने भी सूत्र (25) का प्रयोग किया है। यदि पिरेमिड को हम एक ऐसा छिन्नक समझें जिसका शिखर एक बिंदु हो (अर्थात् शिखर का क्षेत्रफल शून्य हो), तो पिरेमिड या शंकु के आयतन के लिए हमें (22) और (24) से सूत्र

आयतन (Vol) = $\frac{1}{2}$ (आधार का क्षेत्रफल) x ऊंचाई (26)

प्राप्त हो जाएगा जिसके विषय में हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं ।
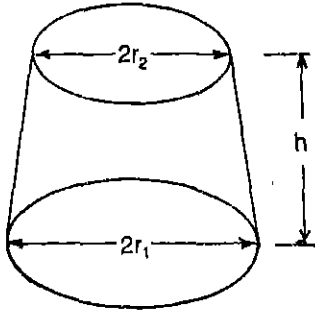
चित्र 2.16

यह याद रखना चाहिए कि अशुद्ध सूत्र (26) को ऊंचाई के बीचों बीच का खंडतल लेकर प्राप्त नहीं किया जा सकता जैसा कि कुछ लोग समझते हैं। केवल आधार और शिखर तक सीमित न रहकर, हम ठोस के और भी अनेक अन्य खण्डतल लेकर औसत की विधि लगा सकते हैं। भारत में इस तरह का एक बहुत सुंदर व्यापक सिद्धांत महावीराचार्य (ई० सन् 850 के लगभग) ने अपने *गणितसार संग्रह* में दिया है। मूलतः यह ब्रह्मगुप्त (ई. 628) के नियम पर आधारित था जिसमें केवल आधार और शिखर का ही विचार किया गया था। क्षेत्रफल को हम उसके अनुरेख आयामों के फलन के रूप में f(a, b, c,.......) से निरूपित करते हैं।

महावीराचार्य के अनुसार

$$V_1 = h\,[\,f(a_1, b_1, c_1, \ldots..) + f(a_2, b_2, c_2, \ldots..) + \ldots\ldots\,] / n$$

$$V_2 = hf\left\{\left(\frac{a_1 + a_2 + \ldots..}{n}\right), \left(\frac{b_1 + b_2 + \ldots..}{n}\right), \ldots..\right\}$$

इनसे आयतन

$$V = (\alpha V_1 + \beta V_2)/(\alpha + \beta) \ldots\ldots \quad (27)$$

जो कि एक भारित माध्य (weighted average) है (महावीर के मान थे $\alpha=1, \beta=2$)

उदाहरण

महावीर के दिए अनेक उदाहरणों में से एक कुएँ पर है जिसके ऊपरी, बीच और नीचे के वृत्तीय खंडों (sections) के व्यास 60, 30 और 15 तथा गहराई 16 है।

यहाँ
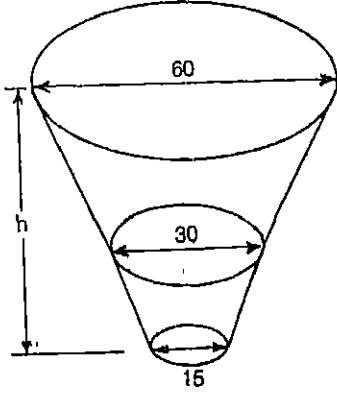
चित्र 2.17

$$V_1 = \frac{\pi}{4}\left(\frac{60^2+30^2+15^2}{3}\right) \times 16 = 6300\pi$$

$$V_2 = \frac{\pi}{4}\left(\frac{60+30+15}{3}\right)^2 \times 16 = 4900\pi$$

$V = (V_1 + 2V_2)/3 = 16100\pi/3$ उत्तर।

सही (सूक्ष्म) मान ऊपर और नीचे के दो भागों का अलग-अलग आयतन शंकु के छिन्नक की विधि से निकालकर जोड़ने से आयेगा, सूत्र है,

$$\pi({D_1}^2 + {D_2}^2 + D_1 D_2)h/12$$

यहाँ ऊपरी भाग का आयतन $= \frac{\pi 8}{12} \quad (60^2 + 30^2 + 60 \times 30)$

$= 4200\pi$

तथा नीचे भाग के लिये आयतन $= \frac{\pi 8}{12} \quad (30^2 + 15^2 + 30 \times 15)$

$= 1050\pi$

अत: सही आयतन 5250π होगा।

अब एक ध्यान देने योग्य बात बतलाते हैं । यदि केवल ऊपर (top) और आधार (base) के दो काट या खण्ड (section) लिए जाएँ, तो महावीर का सूत्र वही हो जाएगा जो 200 वर्ष पूर्व ब्रह्मगुप्त ने प्रतिपादित किया था। यदि वृत्ताकार या आयताकार पिरेमिडों के छिन्नकों (frusta) के आयतन ब्रह्मगुप्त के सूत्र से निकाले जाएँ तो वे एकदम सही आते हैं। कुछ अन्य ठोसों के साथ भी ऐसा ही है।

आयतन संबंधी नियमों के लिए औसत विधि के प्रयोग में प्राचीन चीन भी कम नहीं था। उदाहरण के लिए खण्डित त्रिभुजाकार स्तंभ के लिए आयतन = (आधार) $\times (h_1 + h_2 + h_3)/3$

स्पष्टतया औसत ऊँचाई लेकर लिखा गया है। किंतु यूरोपीय गणितज्ञ ए. एम. लीजेन्ड्र
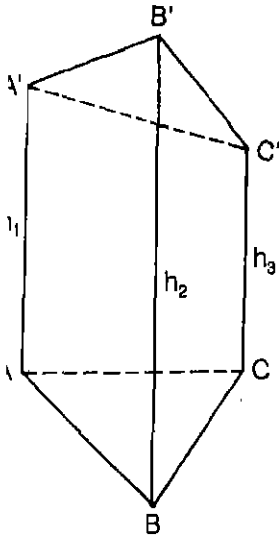
चित्र 2.18

(Legendre) ने ई. सन् 1794 में इसे शुद्ध सिद्ध किया। एक दूसरे औसत पर आधारित चीनी सूत्र था,

$$V = \frac{1}{2}\left(\frac{a+a'}{2} + \frac{b+b'}{2}\right)\left(\frac{h+h'}{2}\right) d$$

जिसे लगाकर उस ठोस का आयतन निकाला जाता था जिसके d दूरी स्थित सिरे समलंब चतुर्भुज थे। एक ओर भुजाएँ और ऊंचाई a, b तथा h तो दूसरी ओर a', b' तथा h' थीं।

विविध

यदि N एक अवर्ग परिमेय संख्या हो तो उसके वर्गमूल के लिए हम इस प्रकार लिख सकते हैं। $\sqrt{N} = \sqrt{a^2 + b}$, जहाँ $0 < b < 2a+1$ (28)

चूँकि $a^2 + b = (a + \frac{b}{2a})^2 - \frac{b^2}{4a^2}$

इसलिए $\sqrt{N} = \sqrt{a^2 + b} = a + \frac{b}{2a}$ लगभग (29)

जो कि प्राचीन काल में एक सामान्य सूत्र था।

अब माना कि

$$f = \sqrt{a^2 + x}$$

यदि x शून्य है तो f का मान a और यदि x, (2a + 1) है तो f का मान (a + 1) होगा।

अर्थात् f में औसत वृद्धि $\frac{1}{(2a+1)}$ प्रति इकाई x की दर से होगी ।

अतः x को b लेने पर

$$\sqrt{N} = \sqrt{a^2 + b} = a + \frac{b}{2a+1} \text{ लगभग} \quad (30)$$

जो प्राचीन में प्रचलित एक अन्य सरल सूत्र था। सूत्र (29) से वास्तविक मान से ज्यादा और (30) से वास्तविक मान से कम वर्गमूल आता है। अतः कभी-कभी दोनों का औसत लेने से एक अच्छा मान प्राप्त हो जाता है, अर्थात् एक नया आसन्न सूत्र मिला

$$\sqrt{a^2 + b} = a + \frac{1}{2}\left[\frac{b}{2a} + \frac{b}{(2a+1)}\right] \quad (31)$$

सच पूछो तो यदि $\sqrt{N}$ का कोई भी स्थूल मान α हो तो $\frac{N}{\alpha}$ एक दूसरा स्थूल मान होगा। अतः औसत लेकर

$$\sqrt{N} = \frac{1}{2}\left(\alpha + \frac{N}{\alpha}\right) \quad (32)$$

जिसे हीरॉन का नियम कहते हैं। इसको बार-बार लगाने से तुरंत अच्छे परिणाम मिल पाते हैं।

उदाहरण के लिए $\sqrt{2}$ निकालने के लिए इसका एक स्थूल मान $\frac{3}{2}$ लिया। अतः (32) से और अच्छा मान होगा।

$$\sqrt{2} = \frac{1}{2}\left(\frac{3}{2} + \frac{4}{3}\right) = \frac{17}{12}$$

अब यदि $\alpha = \frac{17}{12}$ हो तो (32) से ही

$$\sqrt{2} = \frac{1}{2}\left(\frac{17}{12} + \frac{24}{17}\right) = \frac{577}{408}$$

जो कि शुल्ब सूत्रों वाला काफी अच्छा मान है । वर्गमूल के संबंध में एक और औसत का प्रयोग देखिये। माना कि

$$\sqrt{a^2 + b} = a + \frac{b}{2a + c} \quad (33)$$

इसमें C=0 लेने पर सही से अधिक और C=1 लेने पर सही से कम मान मिलता है। अतः C का औसत मान $\frac{1}{2}$ लेते हैं जिससे एक नया सूत्र

$$\sqrt{a^2 + b} = a + \frac{2b}{4a+1} \qquad (34)$$

अरब लेखक अल-युक्लीदिसी (ई. 10 वीं सदी) ने इसे अपने अंकगणितीय ग्रन्थ में दिया है।

गणित के इतिहास में अनन्त श्रेणी,

$$S = 1-1+1-1+1-1+1-1+....... \qquad (35)$$

के बारे में अनेक मनोरंजक बातें मिलती हैं। उसे दो प्रकार लिखकर के अलग-अलग मान प्राप्त किए गए।

$$S = (1-1) + (1-1) + (1-1) + (1-1) + ...$$
$$= 0 + 0 + 0 + 0 + ... = 0$$

और

$$S = 1 + (-1+1) + (-1+1) + (-1+1) + ...$$
$$= 1 + 0 + 0 + 0 + ... = 1$$

अतः औसत के आकर्षण से, S का मान $\frac{1}{2}$ समझा गया जिसे सीधे (35) से भी तीसरी तरह से लिखकर इस प्रकार निकाला जा सकता है।

$$S = 1-(1-1)-(1-1)-(1-1) ....$$
$$= 1-S$$

या $2S = 1$

$\Rightarrow S = 1/2$

अन्त में एक मूल प्रश्न पर विचार करेंगे कि औसत निकालने में सामान्यतया समानान्तर माध्य (arithmetic mean) का ही प्रयोग क्यों किया जाता है, अन्य माध्यों का क्यों नहीं। सरलता के अतिरिक्त क्या इसका कोई सैद्धांतिक आधार है। जी हाँ, अवश्य। इस सिद्धांत का नाम है।

"न्यूनतम वर्गों की विधि"

(Method of Least squares)

इसके अनुसार यदि किसी माप m के विभिन्न मान $m_1, m_2, m_3, \ldots\ldots m_n$ प्राप्त किए गए हैं या कहीं से उपलब्ध हैं, तो m का वह मान ही सबसे बढ़िया होगा, जिससे

$$E = (m-m_1)^2 + (m-m_2)^2 + \ldots\ldots\ldots + (m-m_n)^2 \quad (36)$$

का मान सबसे कम होगा। इस राशि को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

$$E = n\left[m - \left(\frac{m_1 + m_2 + \ldots\ldots + m_n}{n}\right)\right]^2 + \left\{(m_1^2 + m_2^2 + \ldots\ldots) - \frac{(m_1 + m_2 + \ldots)^2}{n}\right\}$$

जिससे स्पष्ट है कि इसका न्यूनतम मान तभी होगा जब

$$m = (m_1 + m_2 + \ldots\ldots + m_n)/n \quad (37)$$

अर्थात् उपलब्ध मानों का औसत।

एक अन्य प्रकार से हम (36) को इस प्रकार निरूपित कर सकते हैं।

$$E = nm^2 - 2Bm + C$$

$$= n\left(m - \frac{B}{n}\right)^2 + C - \frac{B^2}{n} \quad (38)$$

जहाँ $B = m_1 + m_2 + m_3 + \ldots\ldots + m_n$

तथा $C = m_1^2 + m_2^2 + \ldots\ldots + m_n^2$

अब (38) से स्पष्ट है कि E का न्यूनतम मान $(Cn-B^2)/n$ है, जब $m = B/n$, अर्थात् वही जो (37) में है।

अध्याय 3

चक्रीय चतुर्भुज के तृतीय कर्ण की खोज

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "ईश्वर एक वृत्त (circle) है जिसका केन्द्र (centre) प्रत्येक स्थान पर है और परिधि कहीं नहीं।"

वृत्त या चक्र को ईश्वर का प्रतिनिधित्व करनेवाला संकेत मानने की प्रथा अनेक प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित थी। इसका एक कारण यह भी था कि वृत्त का न आदि है और न अन्त और ईश्वर को भी अनादि तथा अनन्त माना गया है। कभी-कभी ईश्वर को केन्द्र और चक्र को सृष्टि समझा जाता है, तथा यह कहा जाता है कि जिस प्रकार चक्र के प्रत्येक बिन्दु की दूरी केन्द्र से बराबर है, उसी प्रकार सृष्टि का प्रत्येक जीव ईश्वर की दृष्टि में समान है। ऊंच-नीच का भेद मनुष्य की अपनी खोज है। ईश्वर के परिपूर्ण होने की बात भी वृत्तीय संकेत में निहित है।

ब्रह्माण्ड को प्रकाश चक्र से निरूपित करने का चलन प्राचीन मिस्र देश में था। भारत में प्राचीन वैदिक काल से आकाश (sky) को सूचित करने वाले शब्द, जैसे खम्, व्योम, इत्यादि बाद में शून्य (zero) के लिये प्रयुक्त हुए जिसे एक छोटे से वृत्त से निरूपित किया जाता है।

देखने में अधिकतर आकाशीय पिण्ड वृत्त में घूमते हुए नज़र आते हैं। प्राचीन ज्योतिष

में भी सूर्य, चन्द्र और ग्रहों की प्रत्यक्ष कक्षाएँ वृत्ताकार ली गई हैं। अतः खगोल शास्त्रीय अध्ययन में आकाशीय पिण्डों की स्थितियों को हवाला या निर्देश वृत्त पर दर्शाना जरूरी था। इस प्रकार वृत्त में तीन बिन्दुओं से त्रिभुज और चार बिन्दुओं से बने चक्रीय (cyclic) चतुर्भुज के अध्ययन को ज्योतिष से प्रेरणा मिली।

वैसे वृत्त के बिना या उससे कोई मतलब न रखे हुए भी तीन भुजाओं से बने त्रिभुज, चार से चतुर्भुज इत्यादि बहुभुजीय क्षेत्रों का अध्ययन भारत में अति प्राचीन समय से होता आ रहा है। इनमें त्रिभुज तो हमेशा चक्रीय होता है। यानी हम हमेशा एक ऐसा वृत्त खींच सकते हैं जो किसी भी दिए हुए त्रिभुज के तीनों शीर्षों से होकर जाएगा। लेकिन अधिक भुजाओं वाले बहुभुजों (polygons) के साथ ऐसा हमेशा संभव नहीं है। चतुर्भुजों में वर्ग, आयत तथा द्विसम समलम्ब चतुर्भुज (Isosceles trapezium) तो हमेशा चक्रीय होते हैं। अन्य तरह के चतुर्भुज विशेष परिस्थितियों में ही चक्रीय होते हैं। प्राचीन भारतीय ज्यामिति में व्यापक समचतुर्भुज (rhombus) और समानान्तर चतुर्भुज (parallelogram) पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि इनका उपयोग कम होता था। उभयतः प्रउगचिति का आकार अवश्य समचतुर्भुज था, परन्तु उसे दो त्रिभुजों (प्रउग) से बनाया गया था।

चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल

किसी भी चक्रीय चतुर्भुज के लिए ब्रह्मगुप्त अपने *ब्राह्मस्फुट सिद्धांत* (XII, 21 उत्तरार्ध) में क्षेत्रफल सम्बन्धी नियम इस प्रकार देते हैं–

भुजयोगार्ध चतुष्टय-भुजोन घातात् पदं सूक्ष्मम् ।।

अर्थात्

"भुजाओं के योग के आधे को चार जगह रखकर उनमें से क्रमशः भुजाओं को घटाओ। बची हुई चार राशियों के गुणनफल का वर्गमूल चतुर्भुज का सूक्ष्म क्षेत्रफल होगा।"

अर्थात्

क्षेत्रफल $S = \sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}$ (1)

जहां भुजयोगार्ध (Semi perimeter)

$$s = \frac{a+b+c+d}{2} \qquad (2)$$

सूत्र (1) चक्रीय चतुर्भुजों के लिए बिल्कुल शुद्ध है। *ब्राह्मस्फुट सिद्धांत* का लेखन काल ई. सन् 628 है, और इसके पूर्व सूत्र (1) किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं मिलता। इस प्रकार भारत के ब्रह्मगुप्त विश्व के प्रथम गणितज्ञ हैं, जिन्होंने इस सूत्र का प्रतिपादन किया। प्रसिद्ध गणित इतिहासज्ञ कार्ल बी. बॉयर (Carl Boyer) के अनुसार सूत्र (1) "शायद ब्रह्मगुप्त के कृतित्व में सबसे सुंदर नियम है।"

भाषा प्रेमी उनकी संक्षिप्त शैली पर भी ध्यान दें।

उदाहरण : उस चक्रीय चतुर्भुज का क्षेत्रफल निकालो जिसकी भुजायें 25,39, 60 और 52 हैं।

यहां $s = \frac{25+39+60+52}{2} = \frac{176}{2} = 88$

क्षेत्रफल $= \sqrt{(88-25)(88-39)(88-60)(88-52)}$

$= \sqrt{63 \times 49 \times 28 \times 36}$

$= 1764$.

आचार्य ब्रह्मगुप्त को सूत्र (1) के लिए श्रेय अवश्य दिया जाता है, लेकिन साथ में विद्वानों की एक शिकायत भी है। वह यह कि ब्रह्मगुप्त ने स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा कि सूत्र (1) केवल चक्रीय चतुर्भुज के लिये सूक्ष्म है, अन्य के लिए नहीं। इसका समाधान यही है कि स्थिति "सूक्ष्म" शब्द में निहित है। अन्यथा केवल चार भुजाएं देने से चतुर्भुज निर्धारित नहीं होता और उसका क्षेत्रफल शून्य से लेकर एक सीमा तक कुछ भी हो सकता है। अतः ऐसी स्थिति में सूक्ष्म क्षेत्रफल का तो क्या, किसी स्थूल मान का भी प्रश्न गम्भीरता से नहीं उठता।

ब्रह्मगुप्त के बाद सूत्र (1) को श्रीधर ने अपनी *त्रिशतिका* में, महावीर ने अपने

गणित सार संग्रह में और श्रीपति ने *सिद्धांत शेखर* में दिया है। महावीर ने यह स्पष्ट किया है कि व्यापक चतुर्भुज के लिये सूत्र (1) सूक्ष्म नही है। यूरोप में सूत्र (1) प्रथम बार डब्ल्यू स्नैल (W. Snell) ने सन् 1619 में अपने द्वारा सम्पादित लुडोल्फ वान क्यूलेन (Ludolphe Van Ceulen) के एक ग्रन्थ की टीका में दिया। भारत में वह सूत्र 1000 वर्ष पहले ज्ञात था। व्यापक चतुर्भुज के क्षेत्रफल के लिए कोई भी सूत्र केवल चार भुजाओं पर आधारित नहीं हो सकता। उसमें कम से कम एक अन्य प्राचल (Parameter) होना चाहिए। जैसे एक बढ़िया सूत्र है–

$$S = \sqrt{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d) - abcd\ \cos^2\theta} \qquad (3)$$

जहां θ चतुर्भुज के दो सन्मुख कोणों का अर्धयोग है। इस सूत्र से स्पष्ट है कि दी हुई भुजाओं से बना चतुर्भुज का क्षेत्रफल अधिकतम (greatest) तब होगा जब θ का मान 90° हो (यानी $\cos\theta = 0$)। इस दशा में चतुर्भुज चक्रीय हो जायेगा। हम जानते हैं कि चक्रीय चतुर्भुज में दो सन्मुख कोणों का योग 180° होता है अर्थात् $\theta=90^\circ$

तब यह सूत्र ब्रह्मगुप्त के सूत्र (1) के समान हो जायेगा।

अतः दी हुई चार भुजाओं से सबसे बड़े क्षेत्रफल का चतुर्भुज वही होगा जो चक्रीय है। याद रखें कि दी हुई चार भुजायें ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक भुजा अन्य तीन भुजाओं के योग से कम हो अन्यथा चतुर्भुज बनाना संभव नहीं होगा।

अब बताओ कि निश्चित घेरे वाले समचतुर्भुज (rhombus) खेतों में वर्गाकार (Square) खेत को चुनना क्या लाभप्रद होगा।

ब्रह्मगुप्त ने अपने सूत्र को कैसे प्राप्त किया था, यह कुछ भी ज्ञात नहीं है। प्राचीन काल में बहुत सी बातें आचार्य शिष्यों को अलग से समझा देते थे।

चक्रीय चतुर्भुज के कर्ण

ब्रह्मगुप्त की ज्यामिति के क्षेत्र में एक और महान् उपलब्धि थी उनका चक्रीय चतुर्भुज

के कर्णों का मान निकाल लेना। इसके लिये ब्राह्मस्फुट सिद्धांत का श्लोक (XII,.28) इस प्रकार है–

"कर्णाश्रित भुजघाततैक्यमुभयथान्योन्यभाजितं गुणयेत् ।

योगेन भुजप्रतिभुजवधयोः कर्णौ पदे विषमे ।।

अर्थात्

दोनों कर्णों के किनारों पर मिलने वाली भुजाओं को अलग-अलग गुणनफल के योगों को एक दूसरे से विभाजित करो, और आमने सामने की भुजाओं के योग में (प्रत्येक भागफल को) गुणा करो। गुणनफलों के वर्गमूल विषम (चक्रीय) चतुर्भुज के दो कर्ण होते हैं ।

चित्र 3.1

(देखें चित्र 3.1) । कर्ण AC के A कोने पर भुजाएं AB(=a) और AD(=d) तथा C कोने पर BC(=b) तथा CD(=c) आश्रय ले रही हैं या मिल रही हैं।
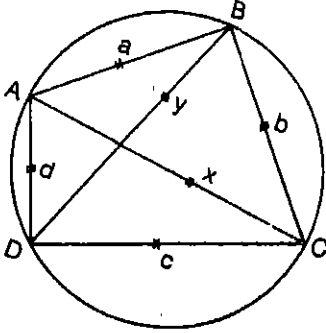
इनके गुणनफल का योग हुआ (ad+bc) जिसको "घातैक्य" की संज्ञा दी गई है। इसी प्रकार BD कर्ण पर आश्रय लेने वाली भुजाओं के गुणनफल का योग हुआ (ab+cd) । आमने-सामने की भुजाओं का "घातैक्य" होगा (ac+bd)। ब्रह्मगुप्त के नियम के अनुसार

$$\text{कर्ण } AC = \sqrt{\frac{ad+bc}{ab+cd} \times (ac+bd)} \qquad (4)$$

तथा

$$\text{कर्ण } BD = \sqrt{\frac{ab+cd}{ad+bc} \times (ac+bd)} \qquad (5)$$

यह दोनों सूत्र भी पूर्णतया या एकदम ठीक हैं, और गणितीय दृष्टि से सुन्दर। उससे भी सुंदर है ब्रह्मगुप्त की संक्षिप्त शैली। बिना किसी गणितीय संकेतों (symbols) के प्रयोग

के इतने जटिल सूत्रों को उन्होंने इतने कम शब्दों में वर्णन कर दिया। केवल तीन "घातैक्यों" की मदद से उनको याद रखा जा सकता है।

एक आधुनिक गणित के इतिहासज्ञ हावार्ड ईव्स (Howard Eves) के शब्दों में सूत्र (4) और (5) "भारतीय ज्यामिति के सबसे विलक्षण और उत्तमता में अनुपम" हैं। (Most remarkable and solitary in excellence) ।

वास्तव में बात है भी ऐसी, क्योंकि यह उपलब्धि आज से लगभग 14 शताब्दी पूर्व की है। यूरोप में तो सूत्र (5) का प्रथम उल्लेख डब्ल्यू स्नैल (W. Snell) ने ईसवी सन् 1619 के आस पास किया है, अर्थात् लगभग एक हजार वर्ष बाद। अभी हाल (सन् 1988) में कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे लगता है कि स्नैल से लगभग 50 वर्ष पूर्व रेजिओमोन्टेनस (Regiomontanus) इत्यादि को सूत्र (1), (4) और (5) ज्ञात थे।

इतना सब होने पर भी ब्रह्मगुप्त की इस श्रेष्ठ ख्याति में लोग थोड़ा सा दोष देखते हैं, जैसे चन्द्रमा में छोटा सा काला धब्बा। यहां भी कुछ विद्वान वही शिकायत करते हैं कि ब्रह्मगुप्त ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उनके सूत्र (4) और (5) केवल चक्रीय चतुर्भुज के लिए हैं। लेकिन ब्रह्मगुप्त ने जो संक्षिप्त शैली अपनाई है, उसमें वे इन सब स्पष्टीकरणों को कैसे महत्व देते, जैसे तार से संदेश भेजने में केवल मुख्य बातें ही लिखना पर्याप्त समझा जाता है, और फिर समझदार के लिये इशारा काफी होता है। ब्रह्मगुप्त ने जो "विषम" (unequal) शब्द का यहाँ प्रयोग किया उसका अर्थ व्यापक विषम (general scalene) चतुर्भुज नहीं, बल्कि चक्रीय विषम चतुर्भुज है, जिसमें दोनों कर्ण (या लम्ब) (altitudes) असमान (unequal) या भिन्न (different) हों। वर्ग, आयत तथा द्विसम समलम्ब चतुर्भुज (isosceles trapezium) के दोनों कर्ण (या लम्ब) समान होते हैं, और उन्हें अन्य विधियों से सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये टीकाकार पृथूदक (9वीं शताब्दी) के अनुसार, इन अविषम (non - scalene) चक्रीय चतुर्भुजों को ब्रह्मगुप्त ने सूत्र (4) तथा (5) देने वाले नियम से अलग रखा है, हालांकि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। (विषम चतुर्भुज के बारे में नीचे भी देखें)।

दुर्भाग्य से बाद के कुछ, भारतीय गणितज्ञों को भी इस विषय में भ्रम और शिकायत बनी रही। उदाहरण के लिये भास्कर द्वितीय ने ब्रह्मगुप्त के मूल संस्कृत श्लोक को अपनी

लीलावती में उद्धृत करते समय यह टिप्पणी की है–

"चार भुजाओं से चतुर्भुज के कर्ण निर्धारित नहीं होते, फिर भी उनको निर्धारित या नियत मानकर ब्रह्मगुप्त आदि ने उनको प्राप्त किया है।"

परिगत वृत्त की त्रिज्या

चक्रीय विषम चतुर्भुज के परिगत वृत्त की त्रिज्या निकालने के लिए ब्रह्मगुप्त का नियम इस प्रकार है –

"हृदयं विषमस्य भुज प्रतिभुज कृतियोग मूलार्धम्"

(ब्राह्मस्फुट सि. XII, 26)

अर्थात्

"विषम चतुर्भुज की किसी भुजा और सामने की भुजा के वर्गों के योग का मूल लेकर आधा करने से हृदय रेखा यानी परिगत वृत्त की त्रिज्या प्राप्त होती है।"

अर्थात्

$$R=\frac{1}{2}\sqrt{a^2+c^2}=\frac{1}{2}\sqrt{b^2+d^2} \qquad (6)$$
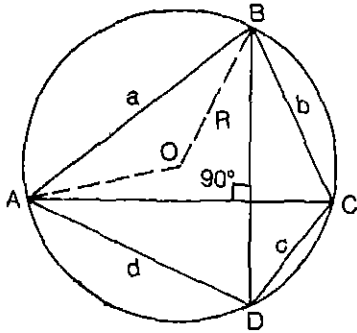
चित्र 3.2

इससे लगता है कि ब्रह्मगुप्त को व्यापक चक्रीय चतुर्भुज के परिगत वृत्त की त्रिज्या निकालने का ज्ञान नहीं था। क्योंकि सूत्र (6) केवल उन्हीं विषम चक्रीय चतुर्भुजों पर लागू होता है जिनके कर्ण एक दूसरे पर लम्ब होते हैं (चित्र 3.2)। अविषम के लिए श्लोक के पूर्वार्ध में सरल नियम दे दिया गया है।

लेकिन यहाँ भी समस्या वही है, क्योंकि ब्रह्मगुप्त ने स्वयं यह सब स्थितियाँ स्पष्ट नहीं की हैं और यदि "विषम" चतुर्भुज का ब्रह्मगुप्त के लिए सदैव

वही अर्थ था जो यहाँ वर्णित नियम के लिए, तो फिर उनके द्वारा दिए गए सूत्र (5) का उन्हें कुछ कम श्रेय मिलेगा। खैर कुछ भी हो, उन चक्रीय चतुर्भुजों का महत्व भी कम नहीं है जिनके कर्ण एक दूसरे पर लम्ब होते हैं। इन्हें गणित के इतिहासज्ञ "ब्रह्मगुप्त चतुर्भुज" कहते हैं, क्योंकि इन्होंने उनके प्राप्त करने का उपाय बताया । बाद में इन पर काफी शोध कार्य हुआ। व्यापक चक्रीय चतुर्भुज के वृत्त की त्रिज्या के लिए सही सूत्र परमेश्वर ने अपनी उस टीका में दिया है जो उन्होंने ईसवी सन् 1432 में प्रसिद्ध ग्रन्थ *लीलावती* पर लिखी थी। दो श्लोकों में वर्णित उनका नियम इस प्रकार है—

दोष्णां द्वयोर्द्वयोर्घातयुतीनां तिसृणां वधे।
एकैकोनेतरत्र्यैक्यचतुष्केण विभाजिते।।
लब्धमूलेन यद्वृत्तं विष्कमभार्धेन निर्मितम् ।
सर्वं चतुर्भुजं क्षेत्रं तस्मिन्नेवावतिष्ठते।।

अर्थात्

"चार में से दो-दो भुजाओं की घातों के तीन योगों को आपस में गुणा करो और फिर भुजाओं में से तीन को जोड़कर तथा चौथी को घटाकर बनाए गये चतुष्टय से भाग दो। लब्धि के वर्गमूल के बराबर त्रिज्या लेकर जो वृत्त खींचा जाएगा, सारा चतुर्भुज उसके अन्तर्गत रहेगा।

यहां a, b, c, d में से एक समय दो घातों के तीन योग होंगे—

(ab+cd), (ac+bd), (ad+bc);

और a, b, c, d में से तीन को जोड़कर तथा चौथे को घटाकर बने चार प्रकार होंगे।

(a+b+c−d), (b+c+d−a), (c+d+a−b), (d+a+b−c)

परमेश्वर के नियम के अनुसार—

$$R = \sqrt{\frac{(ab+cd)(ac+bd)(ad+bc)}{(a+b+c-d)(b+c+d-a)(c+d+a-b)(d+a+b-c)}} \qquad (7)$$

$$= \frac{1}{4}\sqrt{\frac{(ab+cd)(ac+bd)(ad+bc)}{(s-a)(s-b)(s-c)(s-d)}} \qquad (8)$$

जहाँ, $s = \frac{(a+b+c+d)}{2}$

यह सूत्र बहुत ही विलक्षण है और प्राचीन गणित जगत के श्रेष्ठतम सूत्रों में अनुपम। चक्रीय चतुर्भुज के इतिहास में इस सूत्र का महत्व' वही है जो ब्रह्मगुप्त द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रफल और कर्ण संबंधी सूत्रों का। उसकी गणितीय सुन्दरता सराहनीय है और उसका वर्णन करने वाली भाषा शैली भी कम सराहनीय नहीं है।

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि सूत्र (7) के प्राप्त करने की भारतीय विधि भी उस समय के आसपास लिखे ग्रन्थों में उपलब्ध है, और हम उतने अंधकार में नहीं हैं जितने ब्रह्मगुप्त के सूत्रों के बारे में। वास्तव में *क्रियाक्रमकरी* नाम से प्रसिद्ध *लीलावती* की एक अन्य टीका (16वीं शताब्दी) में परमेश्वर के सूत्र को उद्धृत किया गया और फिर उसको सिद्ध भी किया गया। यह उपपत्ति जितनी सरल है उतनी ही वैज्ञानिक और विचित्र (नीचे देखें)।

आगे बढ़ने से पहले एक तथ्य को देना जरूरी है। वह यह कि जो सूत्र (7) भारत में 15वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही प्राप्त कर लिया गया, उसको यूरोप में 1782 ई. में एस. ए. जे. लु-यूलियर (L'Huilier) ने फिर से खोज करके प्रकाशित किया। काश! विश्व और भारत की राजनैतिक और अन्य परिस्थितियां ऐसी होतीं कि यूरोप को कूपमंडूकता से बाहर निकालतीं। तब गणित की प्रगति की गति और अधिक रही होती।

तृतीय कर्ण की खोज़

अब हम गणित के क्षेत्र में की गई भारतीय गणितज्ञों की एक ऐसी खोज (discovery) का वर्णन करते हैं जो अनुपम तो है ही साथ में अति सौंदर्यपूर्ण भी है। वह है चक्रीय चतुर्भुज के तीसरे कर्ण (third diagonal) की, जिसका नाम सुनते ही लोग चौंक उठेंगे। क्योंकि दो कर्ण की बात तो स्पष्टतया प्रत्यक्ष होने के कारण सब जानते हैं, लेकिन यह तीसरा कर्ण चतुर्भुज में कहां होगा। लेकिन पाठकों, यह भारत है जहाँ त्रिशरा (तीन सिर वाली राक्षसी), त्रिजटा (तीन चोटी वाली एक राक्षसी), त्रिनयन (शंकर जी के) इत्यादि कोई

विचित्र संज्ञाएं नहीं हैं, तो त्रिकर्ण (तीन कान) की बात कोई अस्वाभाविक नहीं लगती। कुछ लोग चतुर्भुज के तृतीय कर्ण को एक गणितीय आविष्कार मान सकते हैं, लेकिन उसका विवेचन इतना स्वाभाविक है कि उसे मात्र एक खोज कहना ज्यादा उचित है।

चतुर्भुज के तीसरे कर्ण की खोज किसने, कब और किस स्थान पर की, इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। परन्तु उसके लिये आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करने वाली परम्पराएं काफी प्राचीन हैं। वैदिक काल से ही भारत में विभिन्न आकृतियों की वेदियों (altars) और अग्नियों (fire - places) के क्षेत्रफलों की समानता रखने की धार्मिक आवश्यकता थी। साथ ही एक आकृति में बदलने की जरूरत पड़ती थी। वृत्त को वर्ग में बदलना (Squaring the circle) और वर्ग को वृत्त में बदलना (Circling the square) जैसे गणित के प्रसिद्ध प्रश्न इन्हीं आवश्यकताओं से प्रेरणा पाये और लगभग 5000 वर्ष तक गणितीय जगत में छाये रहे। आकृति परिवर्तन में क्षेत्रफल के स्थान पर कभी कभी उसके घेरे का मान अपरिवर्तित रखा जाता था। इस प्रकार ज्यामितीय आकृतियों में ऐसे परिवर्तनों का अध्ययन करना एक विषय बन गया जिसमें रूपान्तर से आकृति में क्षेत्रफल और परिसीमा (perimeter) वही रहें।
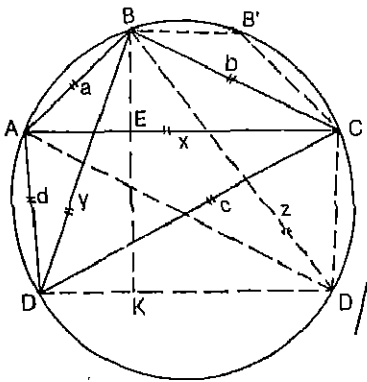
चित्र 3.3

चक्रीय चतुर्भुज (जिन पर भारतीय गणित में ज्यादा ध्यान दिया गया) में किये क्षेत्रफल और परिसीमा परिरक्षित (area and perimeter preserving) रूपान्तरों (modifications) के फलस्वरूप ही तृतीय कर्ण की प्राप्ति हुई।

इसको अच्छी प्रकार से समझने के लिए चित्र 3.3 पर ध्यान दीजिए जिसमें ABCD कोई दिया हुआ चक्रीय चतुर्भुज है जहां AB=a, BC=b, CD=c तथा DA=d है। AC और BD उसके दो कर्ण हैं। अब चाप CD पर D' ऐसा बिंन्दु लें जहां जीवा CD'=AD=d और AD' = CD = c

स्पष्ट है कि त्रिभुज AD'C का क्षेत्रफल वही है जो त्रिभुज ADC का है। इस प्रकार ABCD' एक नया (रूपान्तरित) चतुर्भुज मिला जिसका क्षेत्रफल और परिसीमा दोनों ही वही हैं जो चतुर्भुज ABCD के। परन्तु साथ ही एक नया कर्ण BD' उभरकर सामने आ गया जिसे चतुर्भुज ABCD का तीसरा कर्ण कहते हैं।

इसको जानकर एक प्रश्न स्वाभाविक ही उठेगा। वह यह कि इसी तरह के अन्य रूपान्तर करके हम अन्य बहुत से कर्णों का पता लगा सकते हैं। वास्तव में प्रयत्न किये भी गये।

उदाहरण के लिए चाप BC पर एक बिंदु B' ऐसा लिया जहाँ AB'=CB=b तथा CB' = AB = a है।

इस प्रकार AB'CD' एक अन्य रूपान्तरित चतुर्भुज मिला। परन्तु नए कर्ण B'D' का मान वही है जो BD का। वास्तव में चतुर्भुज AB'CD' भी मूल चतुर्भुज का ही एक पलटा या घूमा हुआ रूप है। अन्यथा दोनों की आकृतियों में कोई अन्तर नहीं है।

अतः एक और नये (चौथे) कर्ण की आशा पर पानी फिर गया। इसी प्रकार रद्दोबदल करके आप ABCD के अन्य रूप प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन तीन के अतिरिक्त कोई नये मान या माप का चौथा कर्ण नहीं मिलेगा। वास्तव में यह सिद्ध किया जा सकता है कि चक्रीय चतुर्भुज के तीन से ज्यादा कर्ण संभव नहीं हैं। सच पूछो तो इस निर्णय की जो उपपत्ति भारतीयों ने उस समय दी वह भी सरल के साथ सुंदर है (आगे का विवरण देखें)।

तृतीय कर्ण सम्बन्धी गणित

यह बात भास्कर द्वितीय (12वीं शताब्दी) को भी ज्ञात थी कि यदि किसी चतुर्भुज की दो पार्श्व भुजाओं की अदला-बदली की जाए, तो उसके दूसरे कर्ण का मान बदल जाता है (अर्थात् एक नया या तीसरा कर्ण मिल जाता है)। उन्होंने *लीलावती* में 25, 39, 60 और 52 भुजाओं और 56 तथा 63 कर्ण वाले चतुर्भुज में दो छोटी(या दो बड़ी) भुजाओं की अदला-बदली करके एक नया कर्ण 65 निकाला है। उनके टीकाकार गणेश दैवज्ञ ने

40, 51, 75 और 68 भुजाओं वाले चतुर्भुज को लेकर 77, 84 व 85 मान वाले (तीनों) कर्ण निकाले हैं।

नारायण पंडित ने अपनी *गणित कौमुदी* (ई. 1356) में इस विषय पर कुछ अच्छे सूत्र दिये हैं। उसके क्षेत्र व्यवहार का 52वां सूत्र इस प्रकार है –

द्विगुणव्यासविभक्ते त्रिकर्णघातेऽथवा गणितम् ।

अर्थात्

"तीन कर्णों के गुणनफल को व्यास के दुगुने द्वारा भाग देने से क्षेत्रफल आ जाता है।" यानी

$$S = xyz/4R \tag{9}$$

जहाँ x, y, z, चतुर्भुज के तीन कर्ण हैं और 2R उसके परिगत वृत्त का व्यास। आगे चलकर उन्होंने (9) का दूसरा रूप भी दिया है–

$$R = xyz / 4S \tag{10}$$

यह सिद्ध किया जा सकता है कि S तथा x,y,z के मान रखने पर सूत्र (10) ठीक सूत्र (7) का रूप ले लेता है।

16वीं शताब्दी में *लीलावती* पर दक्षिण भारत में लिखी गई बृहत् टीका *क्रियाक्रमकरी* में कर्णों का विवेचन बहुत सूक्ष्म और गूढ़ है। सबसे पहले तो यह सिद्ध किया गया कि चक्रीय चतुर्भुज में तीन से ज्यादा कर्ण नहीं हो सकते, भुजाओं की चाहे कितनी ही अदला-बदली करें। प्रस्तुत तर्क इस प्रकार है–
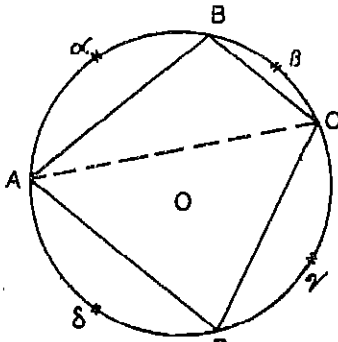
चित्र 3.4

मान लो चार भुजाओं से वृत्त के केन्द्र पर बने कोणों का मान α, β, γ, δ है। इनको हम भुजाओं द्वारा काटे वृत्तीय चापों के भी कोणीय मान कह सकते हैं (जैसा कि प्राचीन भारत में किया जाता था)। कोई भी कर्ण प्राप्त करने के लिए दो चापों की आवश्यकता होगी, जैसे कर्ण AC चाप AB(= α) तथा चाप BC(= β) के सहयोग से बना है (चित्र 3.4 देखें)।

चूंकि उपलब्ध चाप चार हैं, अतः सम्भव कर्णों की संख्या होगी

$$^4C_2 = \frac{4 \times 3}{1 \times 2}$$

लेकिन हम जानते हैं कि $\alpha + \beta + \gamma + \delta = 360^0$

अतः चाप $(\alpha+\beta)$ से जो कर्ण बनेगा, वही चाप $(\gamma+\delta)$ से बनेगा जैसा कि चित्र 3.4 से स्पष्ट है, जहां चाप $(\alpha+\beta)$ से जो AC कर्ण बन रहा है, वही चाप $(\gamma+\delta)$ से भी। अतः वास्तव में 6 के स्थान पर केवल 3 ही स्वतंत्र कर्ण बनेंगे।

चित्र 3.3 में जो तीन कर्ण प्रदर्शित किए गए हैं, उनमें–

कर्ण AC (=x), चाप $(\alpha+\beta)$ से;

कर्ण BD (=y), चाप $(\beta+\gamma)$ से;

तथा कर्ण BD′ (=z), चाप $(\gamma+\alpha)$ से बना है।

इसके बाद *क्रियाक्रमकरी* में एक त्रिकोणमितीय विस्तृत उपपत्ति से निम्नलिखित सूत्र प्राप्त किये गये हैं–

$$ab + cd = yz \quad (11)$$

$$bc + da = zx \quad (12)$$

$$ca + bd = xy \quad (13)$$

यूनानी ज्योतिषी टॉलमी (Ptolemy) को इनमें से केवल एक सूत्र मालूम था, क्योंकि उसे चक्रीय चतुर्भुज के दो कर्ण ही ज्ञात थे। भारतीय गणितज्ञों का यह व्यापकीकरण इतना सुंदर है कि उसकी जितनी सराहना की जाए कम है। उनकी विलक्षण सममिति (symmetry) तो देखिए–

एक गणितीय सुंदरता तो सूत्र (11), (12) तथा (13) को अमूर्त शुद्धगणित दृष्टि से देखा जा सकता है। कोई भी चार संख्याओं a, b, c, d (जहाँ किन्हीं तीन का जोड़ चौथी से ज्यादा हो) से दो-दो लेकर घातों के जोड़े (pairs) बनाये जायें तो ऊपर के संबंधों को छोड़कर अन्य कोई सम्भावना नहीं है।

(11), (12) तथा (13) में से कोई दो का आपस में गुणा करके तीसरे से भाग देकर हम x^2, y^2 तथा z^2 का मान निकाल सकते हैं। फिर वर्गमूल लेने पर तीन कर्णों के मान

अलग-अलग प्राप्त हो जायेंगे।

AC=x और BD=y के लिये ब्रह्मगुप्त के सूत्र (4) और (5) इस तरह प्राप्त हो जाते हैं। लेकिन ब्रह्मगुप्त ने स्वयं 900 वर्ष पूर्व अपने सूत्र इसी तरह प्राप्त किये होंगे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मगुप्त को त्रिभुज के लिये निम्नलिखित सूत्र भी ज्ञात था।

त्रिभुज की हृदयरज्जु (circumradius) = $\frac{\text{पार्श्व भुजाओं का गुणनफल}}{\text{लम्ब का दुगुना}}$ यदि इस सूत्र को चित्र 3.3 में त्रिभुज BDD′ पर लगाया जाए तो

$$R = yz / 2BK \tag{14}$$

लेकिन चतुर्भुज ABCD का क्षेत्रफल

S = त्रिभुज ACB + त्रिभुज ACD

$= (AC \times BE/2) + (AC \times KE/2)$

$= AC \times (BE + EK)/2$

$= x \times BK / 2$

$= xyz / 4R$, सूत्र (14) से।

अर्थात्

$$R = xyz / 4S \tag{15}$$

यदि ब्रह्मगुप्त के सूत्र (1) से S का मान, तथा (11), (12), (13) से x,y,z के मानों को सूत्र (15) में रख दें तो हमें चक्रीय चतुर्भुज की हृदयरज्जु R के लिये परमेश्वर का सूत्र (7) प्राप्त हो जाएगा।

अध्याय 4

मध्ययुगीय दक्षिण भारत की गणितीय उपलब्धियाँ

सुविधा के लिए ऐतिहासिक अध्ययन को अनेक कालों (Periods) में विभाजित किया जाता है। लेकिन यह विभाजन विशेष सभ्यता और विषय के इतिहास के लिए वही नहीं है जो विश्व इतिहास के लिए। स्थूल विभाजन में सामान्यतया प्राचीन, मध्य और आधुनिक ये तीन कालावधियाँ पर्याप्त होती हैं। विश्व के इतिहास का मध्य युग ई. पाँचवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है जब सन् 476 में रोम सम्राट का एक गोथ (Goth) द्वारा विस्थापित होने के साथ महान् रोमन साम्राज्य का पारम्परिक पतन हो गया। विश्व के गणित और विज्ञान के इतिहास के अध्ययन के लिए भी मध्य युग 5 से 15वीं शताब्दी तक माना जाता है।

लेकिन भारत की स्थिति दूसरी थी। अनेक प्राचीन देश जैसे मिस्र, मेसोपोटामिया, फारस, यूनान इत्यादि और भारत में एक विशेष अन्तर यह है कि इसका इतिहास अविच्छिन्नता से चलता रहा।

प्राचीन मिस्र, सुमेर, बेबीलोन, असीरिया, यूनान और रोम की सभ्यताओं और संस्कृतियों का अस्तित्व कभी का समाप्त हो चुका है, परन्तु भारतीय सभ्यता और संस्कृति की धारा बराबर प्रवाह होती रही है। इकबाल के शब्दों में–

यूनान मिस्र रोमां सब मिट गये जहां से
बाकी रहा है अब तक नामोनिशां हमारा।

चित्र 4.1 दक्षिण भारतीय दृश्य

निरन्तर क्रम की इस स्थिति में भारतीय इतिहास के मध्य युग का प्रारम्भ कब माना जाए, इस पर मतभेद होना स्वाभाविक है। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र मजुमदार के अनुसार-

"इस्लाम धर्म के प्रबल आक्रमण के पश्चात् जब संस्कृति का पतन हुआ तथा कला और साहित्य में सृजनात्मक भावना का ह्रास हुआ, उसी समय ईसवी 1000 के आसपास (भारत के) मध्ययुग का प्रारम्भ प्रतीत होता है।"

इस्लाम धर्म के प्रभाव से मध्य एशिया में बौद्ध धर्म प्रायः समाप्त हो गया था। युद्धों से सताये गये हजारों भिक्षु वहाँ से भाग गये थे । महमूद गजनवी (997-1030) ने भारत पर हमला किया और कन्नौज, मथुरा, बनारस आदि नगरों को लूटा। ईसवी 12वीं शताब्दी में इख्तियार उद्दीन मुहम्मद इत्यादि ने हमला करके नालन्दा, ओदन्तपुर और अन्य पूर्वी भारत के बौद्ध विहारों को नष्ट कर दिया तथा भिक्षुओं को मार डाला।

ईसवी सन् 1200 के आसपास दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई जब कुतुबुद्दीन पहला

मुहम्मदी शासक बना। उसका शासन पूरे उत्तरी भारत में था। इस प्रकार नये धर्म के संपर्क से उत्तरी भारत में एक नई संस्कृति की शुरूआत हुई जिसमें प्राचीन भारतीय साहित्य, कला और विज्ञान की मूल परम्पराओं की सृजनात्मक भावनाएँ दब सी गईं। अंतः अधिकतर विद्वान ई. 13 वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भारत के मध्य युग (Medieval Age) का श्रीगणेश मानते हैं।

लेकिन सुदूर दक्षिण भारत अभी भी बाहरी आक्रमणों और राजनैतिक उथल-पुथल से इतना प्रभावित नहीं हुआ था। इसलिए प्राचीन पारम्परिक ज्योतिष और गणित का विकास वहाँ होता रहा और अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हुईं। अतः बहुत से इतिहासकारों का यह मत कि भारत में भास्कराचार्य (12वीं शताब्दी) के बाद पारम्परिक गणित के विकास का सिलसिला ठप पड़ गया, ठीक नहीं है। नीचे के पृष्ठों में हम ई. 13 से 18 वीं शताब्दी के बीच में हुई दक्षिण भारत की गणितीय उपलब्धियों की चर्चा करेंगे जिससे वहाँ के विशेष योगदान का पता चल जायेगा।

मध्ययुगीय दक्षिण भारत के गणितज्ञ

दक्षिण भारत के मध्य युग की गणितीय उपलब्धियों का विषयबार वर्णन करने के पहले हम वहाँ के मुख्य गणितज्ञ और ज्योतिषियों तथा उनकी रचनाओं का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण करेंगे। दक्षिण भारत से हमारा अभिप्राय यहाँ मोटे रूप में वह भाग है जो विन्ध्य पर्वत शृंखला के दक्षिण में स्थित है। इसमें वे विभाग या प्रदेश आते हैं जिनको आजकल आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल कहते हैं। अतः संस्कृत के अतिरिक्त हमें मुख्य चार क्षेत्रीय भाषाओं तेलगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम में लिखी कुछ बातों का उल्लेख करने का अवसर प्राप्त होगा।

मध्य युग में सबसे अधिक योगदान केरल क्षेत्र का रहा है जहाँ आर्यभट प्रथम के अनुयायियों का एक सम्प्रदाय जोर-शोर से कार्यरत था। *आर्यभटीय* के करीब एक दर्जन टीकाकार और अनेक ग्रन्थों की सैकड़ों पांडुलिपियाँ इस क्षेत्र की विरासत हैं। मध्य युग के पहले के केरल क्षेत्र के गणितज्ञों में वररुचि प्रथम (ई. चौथी शताब्दी) वहाँ की ज्योतिषीय परम्पराओं के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने संख्याओं को अक्षरों द्वारा निरूपण करने

की बहुत ही लोकप्रिय प्रणाली का प्रतिपादन किया जिसे "कटपयादिन्याय" कहते हैं। (आगे देखें)।

हरदत्त (ई. 7वीं शताब्दी) ने "परहित" नाम से विख्यात एक नई ज्योतिषीय गणन-पद्धति निकाली। *महाभास्करीय* के प्रसिद्ध भाष्यकार गोविंद स्वामी का स्थान 10^0 उत्तरी अक्षांश (latitude) पर स्थित था। *लघुभास्करीय* के टीकाकार शंकरनारायण (ई. 9वीं शताब्दी), जो सम्भवतः गोविंद स्वामी के शिष्य थे, कोल्लापुरी के निवासी तथा राजा रवि वर्मा के राजज्योतिषी थे। *लघुभास्करीय* के अन्य टीकाकार उदय दिवाकर थे जिनकी *सुन्दरी* (ई. 1073) टीका में संसार प्रसिद्ध चक्रवाल रीति (cyclic method for solving $Nx^2+1 = y^2$) पर जयदेव के श्लोक उद्धृत हैं।

आर्यभटीय के टीकाकार सूर्यदेव यज्वा (जन्म 1191) गंगैकोण्ड चोलापुरम के निवासी थे। उन्होंने मुंजालकृत *लघुमानस* (सन् 932) और गोविंद स्वामी कृत *महाभास्करीय भाष्य* की व्याख्याएँ लिखी हैं।

संगमग्राम में जन्मे माधव (लगभग 1340 से 1425) योगदान की दृष्टि से इस युग के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ और गोलविद् थे। लेकिन उनकी लिखी कुछ गणित की पुस्तकें मूलरूप में उपलब्ध नहीं हैं। केवल परवर्ती उद्धरणों से ही हमें संतोष करना पड़ता है। उनका *वेण्वारोह* (चन्द्रवाक्यानि) छप चुका है तथा कुछ अन्य ग्रन्थ जैसे *महाज्यानयनप्रकार* उपलब्ध हैं।

समुद्रतट पर निला नदी के मुहाने के पास स्थित वटश्रेणी के निवासी परमेश्वर (लगभग 1360-1455) ने लम्बे काल तक वेध किया और परहित पद्धति को शुद्ध करके अपनी दृग्गणित पद्धति चलाई। उन्होंने करीब 30 ग्रन्थों की रचना की जिनमें *दृग्गणित* (1430 ई), *गोलदीपिका* (तीन पाठ), *ग्रहण न्याय दीपिका*, *चन्द्रच्छायागणित* इत्यादि मुख्य हैं। जिन ग्रन्थों पर उन्होंने टीकाएँ लिखी हैं उनके नाम हैं *लीलावती, सूर्यसिद्धांत, आर्यभटीय महाभास्करीय, लघुभास्करीय, लघुमानस* इत्यादि।

आचार्य नीलकंठ सोमयाजि (1444-1545) दक्षिण मलावार में स्थित कुण्डपुर के निवासी थे। उनका *आर्यभटीय भाष्य* बहुत महत्वपूर्ण है। उनके *तंत्रसंग्रह* में भारतीय गणित और गणितीय ज्योतिष की सामग्री भरी पड़ी है। भारतीय ज्योतिष के इतिहास पर उनका *ज्योतिर्मीमांसा*

काफी उपयोगी सिद्ध होगा। *गोलसार* उनकी अन्य रचना है । त्रिचूर के निकटवर्ती गाँव शिवपुरम (चोव्वरम) के निवासी चित्रभानु (लगभग 1475 से 1550) ने सन् 1530 में *कर्णामृता* की रचना की। उनके *एकविंशतिप्रश्नोत्तर* में 21 तरह की समीकरणों का विवेचन है।

तृक्कुटवेलि परिवार के शंकर वारियर (लगभग 1500 से 1560) ने अपने गुरु के *तंत्रसंग्रह* पर *युक्तिदीपिका* तथा *लघुविवृति* नाम की दो टीकाएँ लिखी हैं। बृहत् *युक्तिदीपिका* में तो मध्य युगीय भारतीय गणित की सामग्री प्रचुरता से भरी पड़ी है। *लीलावती* पर भी शंकर ने एक विस्तारपूर्वक टीका लिखना प्रारम्भ की लेकिन उसे समाप्त नहीं कर पाये। उनके स्वर्गवास के बाद नारायण (लगभग 1500 से 1575) ने उसे पूरी की।

ज्येष्ठदेव (लगभग 1500-1610) प्रसिद्ध मलयालम ग्रन्थ *युक्तिभाषा* के कर्ता थे। इसमें गणित नियमों और सूत्रों की उपपत्तियाँ भारतीय परम्परा के अनुसार दी हैं । उसका एक संस्कृत रूपान्तर *गणितयुक्तिभाषा* है । ज्येष्ठदेव के एक शिष्य ने *तंत्रसंग्रह* पर पद्यबद्ध टीका लिखी थी।

महिषमंगलम् परिवार के शंकर नम्पूतिरि (1494-1570) रचित अनेक ग्रथों में *गणितसार, चन्द्रगणित क्रम* और *अयनचलनादि गणित* मुख्य हैं। उनकी *लघुभास्करीय* पर लिखी मलयालम टीका का नाम *बालशंकरम्* है। अच्युतपिषारटि (लगभग 1550-1621) कृत ज्योतिष रचनाएँ हैं – *करणोत्तम, स्फुटनिर्णय* तथा *राशिगोल-स्फुटानीति* ।

पुतुमन सोमयाजि द्वारा सन् 1732 में रचित *करण पद्धति* इतनी लोकप्रिय थी कि उस पर संस्कृत, तमिल और मलयालम में टीकाएँ लिखी गईं । उनका *न्यायरत्न* गणित-ज्योतिष की उपपत्तियों पर आधारित था। अठारहवीं शताब्दी में संग्रहित *ज्योतिष शास्त्र संग्रह* में तम्प्राक्कल ने गणितसार संग्रह प्रकरण को भी सम्मिलित किया है।

यह बात अभी ही प्रकाश में आई है कि कृष्णदास (1756-1852) ने *आर्यभटीय* पर एक मलयालम टीका लिखी है। इसी ग्रन्थ पर घटीगोप (लगभग 1800-1860) ने दो टीकाएँ रचीं – एक संस्कृत में और दूसरी मलयालम में। हालांकि राजकुमार शंकर वर्मा (अप्पुतम्पुरन्) कृत *सद्रत्नमाला* सन् 1823 में रची गयी, उसकी विषय वस्तु पारम्परिक है।

दक्षिण भारत में लिखे गये, महावीर कृत *गणितसारसंग्रह* का उल्लेख हम अनेक बार कर चुके हैं। आंध्र प्रदेश के पावुलूरिमल्लन ने ई. सन् 1100 के आस पास उसका तेलगु

में रूपान्तरण किया जो *सारसंग्रह गणितमु* या *पावुलूरिगणितमु* नाम से लोकप्रिय है। इस क्षेत्र के मल्लिकार्जुन-सूरि (लगभग 1178/1179 ई.) और यल्लय (15वीं शताब्दी) में से प्रत्येक ने *सूर्य सिद्धांत* पर दो टीकाएँ लिखीं जिनमें से एक संस्कृत पर तथा दूसरी तेलगु में है। वल्लभार्य (16वीं सदी) ने तेलगु में *लीलावती* का अनुवाद किया और *त्रिशतिका* पर टीका लिखी।

ई. सन् 1200 के आसपास, राजादित्य ने कन्नड़ भाषा में अनेक गणित विषय के ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें *व्यावहार गणितम्* मुख्य है।

अंकगणित पर तमिल भाषा में कवि काक्कैप्पादिनियार द्वारा रचित *काक्कैप्पादिनियम्* अब उपलब्ध नहीं है। इसी भाषा में लिखित *अस्थान कोलाहलम्* और कारिकृत *कनक्कादिकारम्* में कुछ प्राचीन सामग्री उपलब्ध है।

अब हम दक्षिण भारत की मध्ययुगीय मुख्य गणितीय उपलब्धियों को विषय बार प्रस्तुत करेंगे।

दशमिक स्थानमान संज्ञाएँ और कटपयादिन्याय

परम्परागत दशोत्तर गणना के लिए श्रीधर की 18 संज्ञाओं की सूची उत्तर भारत में लगभग मानक थी। लेकिन दक्षिण में महावीर की 24 नामों की सूची प्रचलित थीं। इसी को आधार मानकर *पावुलूरिमल्लन* ने इसमें 12 नाम और जोड़ दिए। दुर्भाग्य से *पावुलूरिगणितमु* की पांडुलिपियों में इनका पाठ एक समान नहीं है। एक कुलक (set) इस प्रकार है।

निधि ($=10^{24}$), महानिधि, परत, परार्ध, अनन्त, सागर, अव्यय, अचिन्त्य, अमृत, अमेय, भूरि, और महाभूरि ($= 10^{35}$)। केलादि के राजा बसव (लगभग ई. 1700) द्वारा संग्रहित *शिवतत्व रत्नाकर* में भी महावीर की सूची का 37 स्थानों तक विस्तृत रूप प्राप्त है जिसमें अन्तिम संज्ञा परार्ध ($= 10^{36}$) है। लेकिन ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बसव सूची की संज्ञाएँ राजादित्य से प्रभावित हैं जिनका उल्लेख अब किया जाता है।

जैन लेखक राजादित्य ने अपने कन्नड़ ग्रन्थ *व्यावहारगणितम्* में जो 40 नामों की सूची दी है वह दक्षिण भारत या क्षेत्रीय भाषाओं में दी गई सूचियों में सबसे बड़ी है।

संज्ञाएँ इस प्रकार थीं।

(प्रथम 25 नाम महावीर की सूची पर आधारित हैं।)

1 एकम्	21 क्षिति
2 दाहम्	22 महाक्षिति
3 शतम्	23 क्षोभ
4 साबिर	24 महाक्षोभ
5 दासाबिर	25 नदी
6 लक्ष	26 महानदी
7 दालक्ष	27 नग
8 कोटि	28 महानग
9 दाकोटि	29 रथ
10 शतकोटि	30 महारथ
11 अर्बुद	31 हरि
12 न्यर्बुद	32 महाहरि
13 खर्व	33 फणि
14 महाखर्व	34 महाफणि
15 पद्म	35 क्रतु
16 महापद्म	36 महाक्रतु
17 क्षोणी	37 सागर
18 महाक्षोणी	38 महासागर
19 शंख	39 परिमित
20 महाशंख	40 महापरिमित (= 10^{39})

लगता है संसार की उपलब्ध दशोत्तर सूचियों में यह सबसे विशाल है (60 नामों वाली बौद्ध सूची पूर्णतया प्राप्त नहीं है)।

दक्षिण भारत की एक विशेष देन है "कटपयादिन्याय"। इसमें अक्षरों का उपयोग करके संख्याओं को निरूपित किया जाता है। यह संक्षिप्त रीति भारतीय गणित व ज्योतिष के

लेखकों में काफी लोकप्रिय थी। इसके आविष्कार का श्रेय वररुचि को है, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

इस प्रणाली में संस्कृत (नागरी) वर्णमाला के व्यंजनों से बने अक्षरों का निर्धारित संख्यामान होता है चाहे संयोग किसी भी स्वर से हो। तालिका इस प्रकार है:

संख्या	*अक्षर*
1.	क,ट,प,य,
2.	ख, ठ, फ, र
3.	ग, ड, ब, ल,
4.	घ, ढ, भ, व,
5.	ङ, ण, म, श
6.	च, त, ष
7.	छ, थ, स
8.	ज, द, ह
9.	झ, ध, ळ (विशेष अक्षर)
0	ञ, न, स्वतंत्र स्वर

संयुक्त अक्षर में केवल अन्तिम व्यंजन का ही मान लिया जाता है, बाकी सबको छोड़ दिया जाता है। स्वतंत्र स्वरों का मान शून्य होता है। "अंकानां वामतो गतिः" का नियम तो लगाना ही पड़ेगा।

उदाहरण

1. हरि = ह (8) और रि (2) = 28
2. श्रेष्ठ = श् , रे (2), ष्, ठ (2) = 22
3. अशुद्धि = अ (0), शु (5), द्धि (9) = 950
4. यज्ञस्थानम् = य (1), ज् , ञ (0) स् , था (7), न (0) म् = 0701

युगपत् समीकरण (Simultaneous Equations)

चित्रभानु को गणित के इतिहास की पुस्तकों में अभी स्थान नही मिला है। युगपत्

समीकरणों के हल करने के जो नियम उन्होंने अपने *एकविंशति-प्रश्नोत्तर* में दिये हैं, वे *लीलावती* की *क्रियाक्रमकरी* टीका में भी उद्धृत किये गये हैं। दो अज्ञातों (unknowns) से बनी निम्नलिखित 7 राशियों पर विचार करें–

(i) $x+y = a$, कहो
(ii) $x-y = b$
(iii) $xy = p$
(iv) $x^2+y^2 = m$
(v) $x^2-y^2 = n$
(vi) $x^3+y^3 = r$
(vii) $x^3-y^3 = s$

इनमें से, एक समय में, यदि कोई भी दो दी गई हों, तो $^7C_2$ अर्थात् 21 प्रश्न बनेंगे जिन सबका विवेचन चित्रभानु ने किया है। इनमें से 15 प्रश्नों के उत्तर पाना तो उस समय सरल था और चित्रभानु ने उनके सूक्ष्म हल की विधि दी है। उदाहरण के लिए–

$x+y = a$ z (1)
$x^3+y^3 = r$ (2)

लीजिए । चित्रभानु इस प्रकार प्रारम्भ करते हैं–

योगघनाद् घनयोगे त्यक्ते त्रिगुणेन राशियोगेन ।
शिष्टे हृतेऽथ राश्योर्द्वयोर्भविदिष्टयोर्घातः ।।

अर्थात् "अज्ञातों के जोड़ के घन में से उनके घनों के योग को घटाकर, शेष को जोड़ के तीन गुने से भाग करो। परिणाम इष्ट राशियों का गुणनफल होगा।"

यानी यहाँ निम्न सूत्र दिया गया है–

$[(x+y)^3 - (x^3+y^3)] / 3(x+y) = xy$ (3)

इस प्रकार,

$xy = (a^3-r) / 3a = k$ कहो ।

अब प्रश्न आसानी से हल किया जा सकता है, क्योंकि

$(x-y)^2 = (x+y)^2 - 4xy = a^2-4k$

से $(x-y)$ प्राप्त हो जाएगा और अन्त में

$x+y = a$

$x-y = \sqrt{a^2-4k}$

पर "संक्रमण" (अर्थात् जोड़ो, घटाओ और आधा करो) से x और y के मान ज्ञात हो जाएंगे।

उदाहरण के लिए–

उन राशियों को बताओ जिनका योग 25 और घन योग 4375 है।

यहाँ $x+y = 25$

$x^3+y^3 = 4775 = r$

$\therefore xy = (a^3-r) / 3a = 11250 / 75 = 150 = k$

फिर $x-y = \sqrt{a^2-4k} = \sqrt{25} = \pm 5$

धन 5 लेने पर,

$x = 15; y = 10$

तथा $x-y = -5$ लें तो

$x=10, y=15$ होगा।

इस प्रकार 21 में से 15 प्रश्न हल करने की सही विधियाँ चित्रभानु ने दी हैं।

बाकी 6 स्थितियों में सूक्ष्म हल व्यापक त्रिघातीय समीकरण (cubics) पर निर्भर करता है। अतः इन कठिन प्रश्नों में चित्रभानु ने विशेष स्थितियाँ लेकर हल दिये हैं। फिर भी भारत के मध्ययुग में उनका यह प्रयत्न सराहनीय है।

पाई (π) के मान

आर्यभट प्रथम के अनुसार 20000 व्यास वाले वृत्त की परिधि का आसन्न माप 62832 होता है। अर्थात्

$$\pi = C/D = \frac{62832}{20000} \tag{4}$$

आंध्र प्रदेशीय टीकाकार यल्लय ने आर्यभट के नियम को लोकप्रिय कटपयादि प्रणाली

का उपयोग करके इन सुन्दर शब्दों में व्यक्त कर दिया–

"रङ्गेहरिस्तु परिधिर्विष्कम्भोज्ञानिनोनरः।"

अर्थात्

परिधि = र ङ्गे ह रि स्तु = 62832
(2, 3, 8, 2, 6)

जब विष्कम्भ (व्यास) = ज्ञा नि नो न रः = 20000
(0, 0, 0, 0, 2)

इससे कुछ और अच्छा और सरल नियम नीलकण्ठ ने *गोलसार* (III, 12) में भूत संख्याओं का उपयोग करके दिया है–

"विश्वैक समो व्यासः परिधेः प्रायोऽर्थ बाण गुण भागः।"

अर्थात् "जब व्यास विश्वैक (= 113), तब परिधि प्राय' अर्थ- बाण- गुण (= 355) होती है।"

यहाँ, π = C/D = 355/113

ईसवी सन् 1400 के आसपास माधव ने एक बहुत ही सूक्ष्ममान के लिए भूत संख्याओं से भरा यह पद्य गाया –

बिबुधनेत्रगजाहिहुताशन
त्रिगुणवेदभवारण बाहवः।
नवनिखर्वमिते वृति विस्तरे
परिधिमानमिदं जगदुर्बुधाः।

अर्थात् "नौ निखर्व (= 9×10^{11}) व्यास के वृत्त में परिधि का मान सुविज्ञ लोग 28 27, 43, 33, 88, 233 लेते हैं।"

$\therefore \pi$ = 28, 27, 43, 33, 88 233 /9×10^{11}
= 3.14159265359 (लगभग)

आधुनिक गणना से π का 11 दशमलव स्थानों तक सही मान यही है। संख्या π की अपरिमेयता का स्पष्ट उल्लेख नीलकंठ ने अपने *आर्यभटीय भाष्य* में किया है। जिसका मतलब यह है कि π के वास्तविक मान (true value) को सरल भिन्न द्वारा निरूपित करना

असम्भव है (अब हमें यह भी ज्ञात है कि π अबीजीय (non algebraic या transcendental) है। नोट- π की श्रेणी का वर्णन आगे किया गया है।

ज्यासारणियाँ

आर्यभट प्रथम की ज्यासारणी में ज्या nh, अर्थात् R sin nh के मान मिलते हैं, जहाँ $h = 3^0 45' (= 225')$, n=1 से 24, तथा $R = 21600/2\pi = 3438$ कला, लगभग।

परमेश्वर ने *लघुभास्करीय* की टीका (ई. 1408) में जो सारणी दी है, उसमें R का मान 3437' 44" अर्थात् 3437 कला तथा 44 विकला लिया गया है।

माधव ने π का सूक्ष्म मान लेकर

R = 3437' 44'' 48'''

प्राप्त किया (निकटतम तत्परा तक)। इस मान को उन्होंने कटपयादि प्रणाली में इस प्रकार लिखा-

"देवोविश्वस्थली भृगुः"

अर्थात्

दे, वो, वि, श्वं, स्थ, ली, भृ, गुः

(8, 4, 4, 4, 7, 3, 4, 3)

= 3437; 44, 48

इसी प्रकार माधव ने अपनी पूरी सारणी को कटपयादि प्रणाली में व्यक्त किया है। इसे नीलकंठ ने अपने *तंत्रसंग्रह* तथा *आर्यभटीय भाष्य* दोनों में ही उद्धृत किया है। सुविधा के लिये माधव की इस महाज्या सारणी को हम आधुनिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

सारणी

क्रम संख्या (n)	*माधव की महाज्या*	*मान*
1.	श्रेष्ठं नाम वरिष्ठानाम्	0224;50,22
2.	हिमाद्रिर्वेदभावनः	0448;42,58
3.	तपनो भानु सूक्तज्ञः	0670;40,16

4.	मध्यमं विद्धि दोहनम्	0889;45,15
5.	धिगाज्यो नाशनं कष्टम्	1105;01,39
6.	छन्न भोगा शयाम्बिका	1315;34,07
7.	मृगाहारो नरेशोऽयम्	1520;28,35
8.	वीरो रण जयोत्सुकः	1718;52,24
9.	मूलं विशुद्धं नाळस्य	1909;54,35
10.	गानेषु विरळा नराः	2092,46,03
11.	अशुद्धि गुप्ता चोरश्रीः	2266;39,50
12.	शङ्कु कर्णो नगेश्वरः	2430;51,15
13.	तनुजो गर्भजो मित्रम्	2584;38,06
14.	श्रीमानत्र सुखी सखे	2727;20,52
15.	शशीरात्रौ हिमाहारः	2858;22,55
16.	वेगज्ञःपथि सिन्धुरः	2977;10,34
17.	छायालयो गजोनीलः	3083;13,17
18.	निर्मलोनास्ति सत्कुले	3176;03,50
19.	रात्रौ दर्पणमभ्राङ्म्	3255;18,22
20.	नागस्तुङ्ग नखो बली	3320;36,30
21.	धीरो युवा कथालोलः	3371;41,29
22.	पूज्योनारीजनैर्भगः	3408;20,11
23.	कन्यागारे नागवल्ली	3430;23,11
24.	देवो विश्वस्थली भृगुः	3437;44,48

नोटः सारणी में 0224;50,22 का मतलब 224 कला, 50 विकला, और 22 तत्परा है। अन्य मान भी इसी प्रकार समझे जायें।

जीवेपरस्परन्याय

यदि A और B की ज्या मालूम हो तो (A+B) और (A–B) की ज्या कैसे निकाली जाए, इसके लिए सूत्र है–

$\sin(A \pm B) = \sin A . \cos B \pm \cos A . \sin B$

इसका प्राचीन रूप इस प्रकार होगा–

$$R\sin(A-B) = \frac{(R\sin A)(R\cos B)}{R} \pm \frac{(R\cos A)(R\sin B)}{R} \qquad (5)$$

जहाँ R sin A भारतीय ज्या A है।

हालांकि सूत्र (5) भास्कर द्वितीय के *"सिद्धान्त शिरोमणि"* अन्तर्गत ज्या प्रकरण में प्राप्त थे, फिर भी मध्ययुगीय आर्यभट सम्प्रदाय ने इनका श्रेय माधव को दिया। हाँ, एक बात अवश्य है, भास्कर ने इनकी कोई उपपत्ति नहीं दी है, जबकि माधव के अनुयायियों को यह ज्ञात थी।

मलयालम *युक्तिभाषा* (16वीं सदी) में एक उपपत्ति इस प्रकार है।

चित्र 4.2

चित्र में चाप PE = A = कोण EOP

तथा चाप PQ = B = कोण POQ

लम्ब खींचकर PL = ज्या A = R sin A

और OL = कोज्या A = R cos A

जहाँ 2R बड़े अर्धवृत्त का व्यास है। इसी प्रकार

PU = ज्या B = R sin B

तथा OU = कोज्या B = R cos B

जहाँ OP(=R) छोटे वृत का व्यास है।

अब चक्रीय चतुर्भुज PLOU में, "भुजा-प्रतिभुजान्याय" यानी टॉलमी-प्रमेय (Ptolemy's Theorem) से

PL.OU + OL. PU = LU.OP

यानी

(R sin A) . (R cos B) + (R cos A) . (R sin B) = R.LU (6)

लेकिन LU छोटे वृत में (LP+PU) चाप की पूर्ण जीवा (full chord) है।

अतः LU = 2 (R/2) . sin [(2A+2B)/2]

= Rsin (A+B)

क्योंकि चाप PL = कोण PHL = 2A

तथा चाप PU = कोण PHU = 2B

अब यदि LU का मान, समीकरण (6) में रखकर R से भाग कर दें, तो (5) का एक सूत्र मिल जाएगा।

पाई (π) के लिये श्रेणियाँ (series)

(π) पाई के सूक्ष्मतर मान निकालने के लिये सामान्यतया उसके श्रेणी-निरूपणों का उपयोग किया जाता है। तेज अभिसारी (convergent) श्रेणियाँ इसके लिये उपयोगी होती हैं। मध्ययुगीय दक्षिण भारत में पाई (π) की अनेक श्रेणियाँ ज्ञात थीं, चाहे उनका उपयोग

व्यावहारिक हो, शैक्षणिक, या मात्र शास्त्रीय।

एक पद्य, जो *गणित युक्ति भाषा, युक्ति दीपिका* और *करण पद्धति*, तीनों में प्राप्त है, इस प्रकार है–

व्यासाद्वारिधिनिहतात् पृथगाप्तं त्र्याद्ययुग्विमूलघनैः।

त्रिघ्नव्यासे स्वमृणं क्रमशः कृत्वापि परिधिरानेयः।।

अर्थात् "चारगुणित व्यास को 3, 5 आदि विषम संख्याओं के घनों में से उन्हीं संख्याओं को घटाने पर आए शेषों से पृथक-पृथक भाग दो। प्राप्त भागफलों को तीन गुने व्यास में क्रमशः जोड़ो और घटाओ। इस प्रकार (की श्रेणी) से परिधि प्राप्त होती है।"

$$C = 3D + \frac{4D}{3^3-3} - \frac{4D}{5^3-5} + \frac{4D}{7^3-7} \cdots\cdots$$

अर्थात्

$$\pi = 3 + \frac{4}{3^3-3} - \frac{4}{5^3-5} + \frac{4}{7^3-7} \cdots\cdots$$

दो अन्य संस्कृत श्लोकों, जो *गणित युक्ति भाषा, युक्ति दीपिका*, और मलयालम *युक्ति भाषा* में उद्धृत हैं, का अर्थ इस प्रकार है–

"विषम संख्याओं की 5 वीं घातों में क्रमशः उन्हीं संख्याओं के चार गुणों को जोड़ दो। प्राप्त अनेक योगफलों से 16 गुने व्यास को भाग दो, और भागफलों में से विषम पदवी (rank) वालों को जोड़ो और सम पदवी वालों को घटाओ। इस प्रकार परिधि प्राप्त होगी।

अर्थात्

$$\pi D = \frac{16D}{1^5+4\times 1} - \frac{16D}{3^5+4\times 3} + \frac{16D}{5^5+4\times 5}$$

या

$$\pi = \frac{16}{1^5+4.1} - \frac{16}{3^5+4.3} + \frac{16}{5^5+4.5}$$

सांत अर्थात् परिमित पदों की श्रेणी के एक नमूने को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

$$\pi.D = 4D - \frac{4D}{3} + \frac{4D}{5} - \ldots\ldots \pm 4Df(n)$$

जहाँ $f(n) = \frac{(n+1)/2}{(n+1)^2+1}$

क्रियाक्रमकरी में इस श्रेणी को प्राप्त करने का श्रेय माधव को दिया गया है।

ज्या, कोज्या तथा माधव-ग्रिगरी श्रेणी

उच्च गणित में ज्या (sine) और कोज्या (cosine) की ये अनन्त श्रेणियां विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती हैं–

$$\sin x = x - \frac{x^3}{3!} + \frac{x^5}{5!} - \frac{x^7}{7!} + \ldots\ldots \quad (7)$$

$$\cos x = 1 - \frac{x^2}{2!} + \frac{x^4}{4!} - \frac{x^6}{6!} + \ldots\ldots \quad (8)$$

यहाँ x का माप रेडियन में है। इनका प्राचीन रूप था

$$\sin s = s - \frac{s^3}{r^2 3!} + \frac{s^5}{r^4 5} \ldots\ldots \quad (9)$$

$$\cos s = r - \frac{s^2}{r2!} + \frac{s^4}{r^3 4!} \ldots\ldots \quad (10)$$

जहाँ r निर्देशवृत्त की त्रिज्या है और ज्या s (= sin s)
तथा कोज्या s (= cos s) के मान क्रमशः r sin s
तथा r cos s हैं। यहाँ चाप s का माप उसी इकाई में है जिसमें r का। सामान्यतया

यह इकाई थी कला (minute)।

शंकर वारियर (16वीं शताब्दी) ने अपनी *तन्त्रसंग्रहव्याख्या* (युक्ति दीपिका) में सूत्र (9) के लिए निम्नलिखित श्लोक दिए हैं :

निहत्य चापवर्गेण चापं तत्तत्फलानि च
हरेत् समूलयुग्वर्गैस्त्रिज्या वर्ग हतैः क्रमात् ॥
चापं फलानि चाधोऽधोन्यस्योपर्युपरित्यजेत् ।
जीवाप्तयै संग्रहोऽस्यैवं "विद्वान" इत्यादिन कृतः।
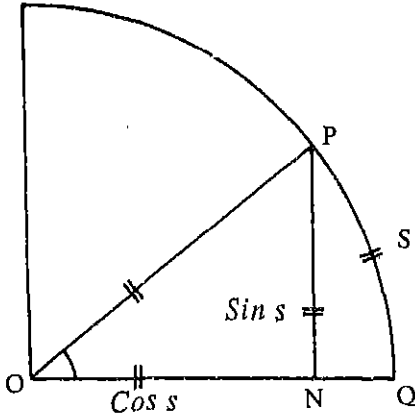
चित्र 4.3

अर्थात्

"चाप को अपने ही वर्ग से बार-बार गुणा करो, और प्रत्येक बार सम संख्याओं को अपने ही वर्ग में जोड़कर तथा त्रिज्या वर्ग से गुणा करके बनी राशियों से क्रमशः भाग दो। अब चाप को और विभिन्न भागफलों को एक खाने (column) में कितने ही पदों तक, लिखो, और अन्तिम पद को उसके ऊपर के पद से घटाओ इत्यादि। इस प्रकार अन्त में ज्या प्राप्त होती है। इसी रीति का वर्णन संक्षेप में "विद्वान" इत्यादि नियम में है।"

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। पहले हमें चाप s को बार बार s^2 से गुणा करके $(2^2+2)r^2$, $(4^2+4)r^2$, $(6^2+6)r^2$ इत्यादि से भाग देना है। इससे निम्नलिखित पद (terms) प्राप्त होंगे--

$t_1 = s.s^2 / (2^2+2)r^2$

$t_2 = s.s^4 / (2^2+2)\ (4^2+4)r^4$

$t_3 = s.s^6 / (2^2+2)\ (4^2+4)\ (6^2+6)r^6$

इत्यादि ।

मान लो हम t_n तक पद लेते हैं। यदि चाप s तथा इन सब पदों को एक खाने में लिखकर नीचे से घटाने का काम करें तो हमें

$s - [t_1 - [t_2 - [t_3 - - (t_{n-1} - t_n) -----]]]$

अर्थात् $s - t_1 + t_2 - t_3 + \ldots\ldots$ (11)

प्राप्त होगा, जो कि sin s का निर्धारित पदों तक का मान होगा।

यदि (11) में $t_1, t_2, ----$ का मान रखें, तो सूत्र (9) मिल जाता है।

अन्तिम पंक्ति में माधव के उन श्लोकों का संदर्भ है जिनका प्रारम्भ "विद्वान" शब्द से होता है और यह भी स्पष्ट हो गया है कि जो नियम माधव ने संक्षेप में कहा था उसी को यहाँ दोहराया गया है।

ठीक इसी प्रकार के नियम सूत्र (10) के लिए हैं। अतः इससे सिद्ध हो जाता है कि ज्या और कोज्या की श्रेणियां भारत में ईसवी 1400 के आसपास माधव को ज्ञात थीं जो कि एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यूरोप के गणितज्ञों (न्यूटन आदि) को इनका ज्ञान 17 वीं शताब्दी में हुआ था।

इसी प्रकार संस्कृत स्रोतों से इस बात का भी पता लगता है कि माधव को निम्नलिखित श्रेणी भी मालूम थी।

$$R\theta \frac{R}{1}\frac{(R\sin\theta)}{R\cos\theta} - \frac{R}{3}\frac{(R\sin\theta)}{(R\cos\theta)^3} + \frac{R}{5}\frac{(R\sin\theta)}{(R\cos\theta)^5}$$

अर्थात् $\tan^{-1}x = x - \frac{x^3}{3} + \frac{x^5}{5} \ldots\ldots$

जो कि यूरोप में जेम्स ग्रिगॉरी (Gregory) को सन् 1670 के लगभग हाथ लग पाई थी (यहाँ $x = \tan\theta$)।

भारत में इन तीनों श्रेणियों की सुन्दर उपपत्तियाँ भी ज्ञात थीं, जिनसे स्पष्ट है कि आधुनिक वैश्लेषिकी (analysis) की नींव भी भारत में ही रखी गई। गणित के इतिहासज्ञ जानते हैं कि इस श्रेय में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

इन पृष्ठों में दक्षिण भारत की केवल चुनी हुई उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। वैसे और भी उल्लेखनीय उपलब्धियाँ थीं। जैसे ज्यामितीय बीजगणित (geometrical

algebra) के क्षेत्र में, शुल्बसूत्रो की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, आर्यभट सम्प्रदाय के गणितज्ञों ने उसका विकास किया। उदाहरण के लिए, गुणोत्तर श्रेणी (G.P.) के जोड़ के सूत्र,

$$S_n = a(r^n-1)/(r-1)$$

को एक बहुत ही सुन्दर ज्यामितीय विधि से सिद्ध किया गया। इसका उल्लेख हम विशेष रूप से कर रहे हैं, क्योंकि कुछ विद्वान इसकी ज्यामितीय उपपत्ति की बात कठिन समझते हैं।

दक्षिण भारत की कुछ अन्य उपलब्धियों को हम अन्य अध्यायों में बता चुके हैं, जैसे चक्रीय चतुर्भुज की हृदय रज्जु (circum-radius) के लिये पिछला अध्याय देखें। कुछ उपलब्धियों का क्षेत्र उच्च गणित होने से उनकी चर्चा यहाँ नहीं की जा सकती है। (जैसे Taylor Series, Higher Interpolations)

इस अध्याय में वर्णित सामग्री से स्पष्ट है कि प्राचीन गणितीय परम्परा का दीपक दक्षिण भारत में सदियों तक जगमगाता रहा, जबकि उत्तर भारत में नई राजनैतिक स्थिति के कारण विद्वान आयातित अरबी ग्रंथों के विदेशी ज्ञान में रुचि लेने लगे थे। बाद में अंग्रेजी शासन के समय, जब पश्चिमी शिक्षा की हवा चली तो परम्परागत स्वदेशी अध्ययन का दीपक बुझ सा गया, और वह ज्ञान इतिहास का विषय बन गया।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में, आधुनिक गणित के जगत में भारत का सूर्य रामानुजन के रूप में फिर उदय हुआ। उनके बारे में जानकारी अगले अध्याय में दी जा रही है, लेकिन उन पर प्राचीन भारतीय गणित की परम्परा का कितना प्रभाव था, यह कहना कठिन है।

अध्याय 5

गणित सम्राट रामानुजन

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक की बात है। श्रीनिवास रामानुजन सख्त बीमारी की हालत में इंग्लैंड के एक नर्सिंग होम में भर्ती थे। उनसे मिलने के लिये प्रो. जी. एच. हार्डी टैक्सी से नर्सिंग होम पहुंचे। चूंकि रामानुजन का हाल चाल जानने के बाद प्रो. हार्डी को उसी टैक्सी से वापिस जाना था, इसलिये उसका नंबर याद रख कर अंदर चले गये।

रामानुजन के कक्ष में पहुंचकर प्रो. हार्डी ने उनसे तबियत के बारे में पूछताछ की। रोगी ने धन्यवाद देते हुए बतलाया कि उसकी हालत पहले से अच्छी है।

लेकिन आगन्तुक को इस उत्तर में सच्चाई से ज्यादा औपचारिकता महसूस हुई। क्योंकि रामानुजन क्षय रोग से ग्रसित थे और वह अंदर से क्षीण होते जा रहे थे। रोगी के चेहरे की उदासी से भी यह बात जाहिर होती थी।

प्रो. हार्डी चिंता में थे, क्योंकि रामानुजन की विलक्षण प्रतिभा और स्वस्थ शरीर के बीच एक शोकपूर्ण संघर्ष उनके सामने था। इसी बीच, टैक्सी का नम्बर याद करते हुए प्रो. हार्डी बोले–

"मैं जिस टैक्सी से आया हूँ उसका नम्बर 1729 है। यह संख्या इतनी नीरस है कि

चित्र 5.1 श्रीनिवास रामानुजन (1887-1920)

इसे याद रखने में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। फिजूल में दिमाग पर जोर देना पड़ रहा है। आशा है कि वह कुछ अपशकुन सूचक नहीं होगी।"

"नहीं, ऐसा कदापि नहीं है," रामानुजन ने फौरन उत्तर दिया और आगे कहने लगे–

"यह बड़ी रोचक संख्या है। यह उन पूर्ण संख्याओं में सबसे छोटी है जिनको दो अलग-अलग प्रकार से दो घनों के योग के रूप में प्रकट कर सकते हैं।" *

अर्थात्

$1729 = 12^3 + 1^3$

और $1729 = 10^3 + 9^3$,

रामानुजन द्वारा कहे 1729 के इन निरूपणों को सुनकर प्रो. हार्डी चकित हो गये। उनको आश्चर्य हो रहा था कि रोग ग्रसित अवस्था में पड़े होने पर भी रामानुजन मानसिक रूप से इतने जागृत और सक्रिय हैं।

प्रो. हार्डी स्वयं एक महान् गणितज्ञ थे। संख्या 1729 के रोचक गुण को जानकर वे आनन्दित हुए। रोग की बातें भूलकर अब वहाँ गणितीय वार्तालाप होने लगी। प्रो. हार्डी ने रामानुजन से पूछा–

"क्या आप इसी गुण वाली चौथी घात की संख्या बता सकते हैं।"–

थोड़ा सा सोचकर रामानुजन ने उत्तर दिया।

"ऐसा कोई सरल उदाहरण अभी मेरे समक्ष नहीं है। लेकिन इस तरह की पहली संख्या अवश्य बहुत बड़ी होगी"।

जी हाँ वह इच्छित बड़ी संख्या करोड़ों तक जाती है। नौ अंकों वाली वह संख्या है

63, 53, 18, 657, क्योंकि

$63, 53, 18, 657 = 133^4 + 134^4$

तथा $63, 53, 18, 657 = 158^4 + 59^4$

जो व्यक्ति सख्त बीमारी की दशा में भी इस तरह के कठिन गणितीय उद्‌गार कर सकता था, उसकी गणित के प्रति रुचि और साधना अवश्य गहरी रही होगी। रामानुजन

*अगली ऐसी संख्या $4104=16^3+2^3$ और $4104=15^3+9^3$

का गणित के प्रति प्रेम इतना अधिक था कि वे उसमें सदैव लीन रहते थे, जैसे एक सच्चा भक्त भगवान के ध्यान में।

यही कारण है कि उनमें संख्याओं के विशेष गुणों को याद रखने की अपार क्षमता थी। किसी ने सच ही कहा है कि

"प्रत्येक धनात्मक पूर्णांक रामानुजन का व्यक्तिगत मित्र था।"

रामानुजन की प्रखर बुद्धि, अलौकिक प्रतिभा और सतत साधना ने विपरीत परिस्थितियों में भी, उनको गणित के उच्च शिखर पर पहुंचा दिया था। फलस्वरूप उनकी गणना संसार के कुछ गिने चुने गणित सम्राटों में की जाती है।

इस अध्याय में हम तुम्हें उस गणित सम्राट के जीवन, कार्य और उपलब्धियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी देंगे, जिसने आधुनिक गणित के क्षेत्र में भारत का मस्तक ऊँचा किया।

संघर्षमय जीवन

विवाह के अनेक वर्षों बाद भी जब कोमलम्माल के कोई संतान न हुई तो, ज्योतिषियों की सलाह पर, उसने नामगिरि देवी की विशेष उपासना की। देवी की कृपा से वह गर्भवती हुई और उसने एक बालक को जन्म दिया। माँ उसे प्यार से चिन्नस्वामी पुकारती थी लेकिन उसका नाम था श्रीनिवास रामानुजन।

रामानुजन का जन्म गुरुवार 22 दिसम्बर 1887 ई. को तमिलनाडु के ईरोड नगर में हुआ था जहाँ उनके नाना एक मुंसिफ की अदालत में काम करते थे। लेकिन उनके पिता जो एक वैष्णव ब्राह्मण थे, प्रसिद्ध तीर्थस्थान कुम्भकोणम में एक बजाज के यहाँ बही-खाते का काम करते थे। इस प्रकार गर्भ से ही रामानुजन धार्मिक परिवेश में पले जो उन्हें मां-बाप, तथा निवास स्थान के सारे वातावरण में उपलब्ध था। बचपन में रामानुजन को अपनी माँ से बहुत से भजन और कथाएँ सुनने को मिलीं।

इसी प्रभाव से बाद में भी, धार्मिक साहित्य के प्रति उनकी रुचि बनी रही, और उन्होंने उपनिषद् , तिरुकुरल इत्यादि पढ़े।

पाँच वर्ष की आयु में रामानुजन कुम्भकोणम की एक पाठशाला में भर्ती हुए जहाँ तमिल भाषा के साथ उन्होंने अंकगणित भी सीखा। बचपन से ही वे बहुत शांत और गम्भीर प्रकृति के थे। जब सहपाठी उनसे हँसी-मजाक और परेशान करने वाली अन्य हरकतें करते थे, तब भी वह कुछ नहीं बोलते थे। उनकी इस सहनशीलता और शांतिप्रियता का लोगों ने नाजायज फायदा तो उठाया, लेकिन उनके मन में रामानुजन के प्रति आदर और स्नेह भी जगा। देखने में तो उनका डीलडौल ठीक था, लेकिन वह अक्सर बीमार पड़ जाते थे। उनके चेहरे पर चेचक के कुछ निशान थे।

नवम्बर सन् 1897 में प्रथम श्रेणी में प्राथमिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, रामानुजन ने कुम्भकोणम के टाउन हाई स्कूल में प्रवेश किया जहाँ वह 1898 से 1904 तक शिक्षा पाते रहे। उनकी प्रतिभा ने सहपाठियों के अतिरिक्त शिक्षकों को भी प्रभावित किया था। पाठन की समयसारणी बनाने का टेढ़ा काम रामानुजन को ही दिया जाता था, क्योंकि प्रभारी अध्यापक उसकी क्षमता जानते थे। लेकिन ऐसे अद्वितीय प्रतिभाशाली छात्र के पास भी विद्यालयीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पैसे नहीं थे। एक बार ट्राम से यात्रा करते समय उसकी टोपी हवा में उड़ गई जिसे खरीदने के लिये उसके पास आठ आने भी न थे। अतः नंगे सिर होने के कारण उसे संस्कृत शिक्षक की नाराजगी का सामना करना पड़ा था।

टाउन हाई स्कूल में पढ़ते समय रामानुजन ने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया। वह सबसे ज्यादा ध्यान गणित पर देते थे जिससे उन्हें विशेष प्रेम था। इस विषय पर कभी-कभी वह कक्षा में ऐसे प्रश्न पूछते थे जो अध्यापक को भी चकरा देते थे। सच पूछो तो उस किशोर उम्र में भी वह गणित के उच्च, जी हाँ पाठ्यपुस्तकों से बहुत आगे के, ग्रन्थ समझ लेते थे।

एस.एल. लोनी (Loney) की *समतल त्रिकोणमिति* के दूसरे भाग (जो वैश्लेषिक है और स्नातकी में पढ़ाई जाती थी) की दक्षता प्राप्त कर ली थी। दिसम्बर सन् 1903 में मद्रास विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने से उन्हें आगे पढ़ने के लिये छात्रवृत्ति मिली। आजकल टाउन हाई स्कूल में एक बड़े कक्ष का नाम उसने अपने उस प्रतिभाशाली छात्र की याद में (रामानुजन हाल) रखा है।

सन् 1904 में एफ. ए. (First Arts) की पढ़ाई के लिए रामानुजन ने अपना नाम गवर्नमेंट कालेज (कुम्भकोणम) में लिखा लिया। प्रथा के अनुसार, अंग्रेजी और गणित के अतिरिक्त उन्हें कुछ अन्य विषय भी पढ़ना आवश्यक था। लेकिन अधिकतर समय तो वह अपने प्रिय विषय गणित को ही देते थे जिसके पढ़ने में उन्हें आनन्द आता था। इस विषय की जो कुछ उच्च पुस्तकें उन्हें मिलीं, उनका गहन अध्ययन किया और नये नये गणितीय प्रमेय तथा परिणाम निकाले। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक जी. एस. कार लिखित पुस्तक *A Synopsis of Elementary Results in Pure and Applied Mathematics (1880/1886)* का रामानुजन पर विशेष प्रभाव पड़ा। इस ग्रन्थ की शैली अपनाकर रामानुजन ने स्वयं भी अनेक गणितीय उपलब्धियों पर पन्ने के पन्ने भर डाले। बाद में जब यही पन्ने उनकी "नोटबुक्स" के नाम से छपे (बम्बई, 1957) तो दुनिया के अनेक गणितज्ञों के लिये वर्षों तक शोध की सामग्री का विषय बने।

गणित की गवेषणा का आनन्द तो रामानुजन ने पाया, पर अन्य विषयों के प्रति अरुचि के परिणाम भी भुगतने पड़े। हुआ यह कि वे 11वीं कक्षा की वार्षिक परीक्षा में सफल न हो सके। उस समय की दृढ़ शिक्षा प्रणाली ने जो सब विषयों पर बराबर ध्यान चाहती थी, रामानुजन को क्षमा न कर सकी। छात्रवृत्ति से तो हाथ धोना ही पड़ा, साथ में गणित की साधना का जो सिलसिला चैन से चल रहा था वह भी मानसिक अशांति के कारण हाथ में न रहा।

एक निर्धन छात्र की छात्रवृत्ति के छूट जाने से उसे कागज भी क्रय करने के लिये कठिनाई हो रही थी।

नतीजा यह हुआ कि रामानुजन बहुत निराश हुए। यहाँ वहाँ प्रयत्न करने से केवल कटु अनुभव ही हाथ लगे। परेशानी में भटकने के कारण कक्षा में उनकी हाजिरी भी पूरी नहीं हो सकी। अतः गवर्नमेंट कालेज छोड़ना पड़ा। किसी तरह मद्रास के पचैयप्पा कालेज के प्रिंसिपल जे. ए. येट्स (Yates) ने मदद की तो बीमारी ने दबोच दिया। उसको भी छोड़ना पड़ा। निजी (Private) परीक्षार्थी के रूप में इम्तहान दिया (1907) तो फिर फेल हो गए और इस प्रकार प्रायः छात्र जीवन समाप्त हो गया।

लेकिन लगता ऐसा है कि इन सब परिस्थितियों के बावजूद उनकी गणित के प्रति लगन में कोई अन्तर नहीं आया। और वह नित्य नवीन खोजें करते रहे। उनके माँ-बाप को आजीविका साधन के बिना रामानुजन का दिन रात गणित से चिपके रहना पसंद न था। परिवार की आय तो मुश्किल से बीस रुपये प्रतिमाह थी। अतः रामानुजन का ध्यान "गणित की बेकार साधना" से हटाकर व्यावहारिक जीवन की ओर मोड़ने के लिये वही उपाय किया जो प्रायः इस तरह की "बीमारी" में किया जाता है, और वह है "बीवी के बन्धन में बांधना"। और इस प्रकार 1909 में रामानुजन का विवाह जानकी देवी नाम की कन्या* से संपन्न हो गया जबकि वह मात्र 10 वर्ष की थी। कहा जाता है कि रामानुजन के पिता विवाह में उपस्थित नहीं थे।

रामानुजन की औपचारिक शिक्षा का क्रम तो पहले ही टूट चुका था। अब विवाह हो जाने से गृहस्थ जीवन व्यतीत करने की भी जरूरत आ पहुंची थी। उधर माँ-बाप की आर्थिक हालत तो पहले से ही खस्ता थी। अतः यह स्वाभाविक था कि रामानुजन कोई काम काज करके कुछ पैसे कमाये और अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए मां-बाप पर निर्भर न रहे। इसीलिए वह धनोपार्जन की चिंता करने लगे।

वह सोचते थे कि यदि कोई ठिकाने का काम मिल जाये तो मां-बाप का सहारा नहीं तकना पड़ेगा, और उनका दबाव कम होने से वे अपनी गणित संबंधी साधना भी यथावत चलाते रहेंगे।

लेकिन नौकरी खोजने में उन्हें बड़ा संघर्ष करना पड़ा और बहुत सी मुसीबतें झेलनी पड़ीं। आज अस्सी वर्ष बाद भी युवकों की यह समस्या ठीक वैसी ही है, हालांकि जमाना कहीं से कहीं जा पहुँचा। घरेलू अध्यापन (Tuition) के काम में भी रामानुजन को सफलता न मिल सकी क्योंकि "ग्राहक" की रुचि ज्ञान में नहीं, बल्कि इम्तहान पास करने में होती थी।

अतः रामानुजन को नौकरी के लिए कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सामने उनकी कृपादृष्टि और मेहरबानी के लिए हाथ फैलाने के अलावा कोई अन्य उपाय नहीं सूझा। वह तिरूकोयलूर

*इनका स्वर्गवास 13 अप्रैल, 1994 को हुआ।

के डिप्टी कलक्टर रामास्वामी अय्यर से मिले। अय्यर जी ने 1907 में भारतीय गणित परिषद् (I.M.S.) की स्थापना की थी। वे गणित के वास्तविक महत्व को समझते थे और रामानुजन को किसी दफ्तर की बाबूगिरी में उलझाकर उसकी गणित साधना में कमी करने का पाप अपने सिर पर नहीं लेना चाहते थे। अतः उन्होंने एक पत्र के साथ रामानुजन को मद्रास में प्रो. पी. वी. शेषु अय्यर के पास भेज दिया। उनकी कृपा से रामानुजन ने एक दफ्तर में अस्थाई पद (leave vacancy) पर काम किया, लेकिन थोड़े दिन बाद फिर बेक़ार हो गये।

उस समय (लगभग 1910-11) में तो रामानुजन के ऊपर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उनको एक-एक दिन पहाड़ सा लगता। ट्यूशन की खोज में यहाँ वहाँ भटकते थे। पर कुछ नहीं हुआ। वह अक्सर कहते थे कि निर्धनता में मरना ही उनके भाग्य में लिखा है। अक्सर पेट भर भोजन नहीं मिल पाता और रात को भूखे ही सो जाते। खुराक पूरी न मिलने के कारण वह बीमार पड़ गये। उधर मकान मालिक ने भी घर खाली करने को विवश कर दिया। अतः सामान बांधकर एक मित्र के यहाँ अचानक पहुँच गये। लेकिन बिगड़ती हुई तबियत की वजह से बाद में घर (कुम्भकोणम) चले गये।

इस प्रकार हम रामानुजन को एक बहुत बड़े जीवन संघर्ष में उलझा हुआ पाते हैं, विशेष रूप से उनके 11वीं दर्जे में असफल होने के बाद से। लेकिन ऐसा लगता है कि यही पाँच-छह वर्ष की अवधि (लगभग 1905 से 1911 तक) वह समय था जब रामानुजन की प्रतिभा शिखर पर थी, और वे उत्कृष्ट रूप से बौद्धिक कार्य में सक्रिय थे। गणितीय क्षेत्र में उनकी सृजनात्मक शक्ति पूरे जोर शोर से काम कर रही थी और वे गणित में नित्य नये नये परिणाम बराबर प्राप्त करते जा रहे थे।

परीक्षा में असफल होने की निराशा उनकी सक्रियता को स्तब्ध न कर सकी । दबोच देने वाली निर्धनता और माँ-बाप की डाट-डपट उनको अपनी लगन से न हटा सकी। हाड़-मांस की बनी प्रेयसी उनके गणित प्रेम को न तोड़ सकी; नौकरी न मिल पाने का मानसिक कष्ट उनके लिये कण्टक न बन सका। पेट में चूहे बिलबिलाते रहे पर गणित की दुनिया में खो जाने की आदत से, उनका ध्यान विचलित न कर सके। यहाँ तक कि शारीरिक

अस्वस्थता और बीमारी भी उन्हें गणित की सृजनात्मक सुंदरता के आनंद में विभोर होने से न रोक सकी।

विशेष ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि उनके गणितीय शोधों का कार्य किसी प्राध्यापक की देखरेख में नहीं चल रहा था बल्कि केवल स्वयं के अध्ययन का परिणाम था।

मालूम पड़ता है कि कोई अदृश्य शक्ति उनमें कार्य कर रही थी या कोई अन्तर्ज्योति उनका मार्गदर्शन करती थी । तभी तो इतनी अंधकारमय दुनिया और जीवन में भी वे अपनी एकाग्रता से विचलित नहीं हुए। बाहरी शक्तियां और आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, व्यक्तिगत और यहाँ तक कि मानसिक परिस्थितियाँ भी उनके नई खोज करने के आवेग को न कुचल सकीं। उस अदृश्य शक्ति के पोषण से उन्हें स्फूर्ति मिलती थी और वे प्रज्ज्वलित ज्ञान के क्षेत्र में अपने उज्जवल अन्तर्ज्ञान का प्रकाशमय चमत्कार दिखा देते थे।

रामानुजन कहा भी करते थे कि नामगिरि देवी स्वप्न में आकर उन्हें गणित के सूत्र बतला जाती थी। लेकिन आश्चर्य यह है कि देवी जी लोगों को सुबुद्धि देने में कंजूसी क्यों कर रही थी, जिसके कारण रामानुजन को इतनी मुसीबतें उठानी पड़ीं। क्योंकि यह मानते हुए भी कि रामानुजन ने विपरीत परिस्थितियों में इतना ऊँचा कार्य किया, यह नहीं कहा जा सकता कि कार्य में जरा भी अवरोध नहीं हुआ था। उपलब्धि एक सापेक्ष बात है और गणितीय परिणामों की उच्चता की कोई सीमा नहीं है। सामान्य तर्क यही बताता है कि यदि परिस्थितियाँ विपरीत न होतीं, तो रामानुजन का कार्य और ऊंचा तथा ज्यादा होता। आखिर बेहतर परिस्थितियों की बात सोचकर ही उनका इंग्लैण्ड जाना ठीक समझा गया (आगे का वर्णन देखिये)।

फिर भी यह एक विवादास्पद विषय है कि जीवन और संसार की दशा और उपलब्धियों के बारे में हम लोग स्वयं स्वतंत्र निर्णयात्मक कर्ता हैं, या कोई अदृश्य शक्तियों का नियंत्रण हैं।

मालूम पड़ता है कि नौकरी छूटने और बीमार पड़ने से रामानुजन काफी हताश और निराश हो चुके थे। इसलिए घर जाने के पहले उन्होंने अपनी दो नोटबुकें भी मित्र को "यदि मैं वापिस न आऊं इत्यादि" इन शब्दों के साथ सुपुर्द कर दी थीं। लेकिन सौभाग्य

से तबियत ठीक हो गई और वे मद्रास वापिस लौट आये। परन्तु रोजी रोटी की समस्या तो अभी भी हल नहीं हुई थी। बच्चों को पढ़ाकर थोड़े बहुत पैसे मिल जाते थे। रामानुजन नेल्लूर के कलक्टर दीवान बहादुर आर. रामचंद्र राव से मिले और उनसे कुछ काम दिलाने की प्रार्थना की ताकि "पेट भर अन्न मिल जाये और मैं अपना शोध कार्य जारी रख सकूं"। राव की गणित में कुछ रुचि थी और वे रामानुजन के कार्य से प्रभावित हुए। उस भले आदमी ने रामानुजन को कुछ दिनों तक माहवारी खर्च भी भेजा। लेकिन लोगों ने इस तरह के दान पर जीवित रहने में आत्मसम्मान का प्रश्न उठा दिया। वे भूल गये कि उस परिस्थिति में भगवान ने किसी को "निमित्त मात्र" बनाकर मदद की तो इसमें क्या हर्ज था।

भाग्योदय और जीवनचर्या का शिखरत्व

रामानुजन का प्रथम शोध निबंध बरनूली संख्याओं (Bernoulli's Numbers) पर था जो भारतीय गणित परिषद् की पत्रिका (J.I.M.S) में दिसम्बर 1911 में प्रकाशित हुआ था। गणितज्ञ और गणित में रुचि रखने वाले उसके कार्य का महत्त्व समझते थे। रामास्वामी अय्यर और शेषु अय्यर उसकी मदद करने के उत्सुक थे। लेकिन इम्तहान, विश्वविद्यालय की उपाधि, छात्रवृत्तियों के नियम, कानूनी बंधन इत्यादि सामाजिक और शैक्षणिक रीति-रिवाज इतने दृढ़ थे कि उचित रूप में वास्तविक मदद करना आसान न था।

भाग्य से मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के दफ्तर में एक जगह खाली थी और वहाँ के प्रबंधक एस. नारायण अय्यर गणितज्ञ के साथ रामास्वामी अय्यर और शेषु अय्यर के मित्र भी थे। अतः जब गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह इन अय्यरों की त्रिवेणी का संगम हुआ तो रामानुजन के भाग्य का सितारा चमक गया।

उधर पोर्ट के अध्यक्ष फ्रांसिस स्प्रिंग (Spring) ने सहर्ष अनुमोदन कर दिया। बात बन गयी, और रामानुजन को 25 रुपये प्रतिमाह की नौकरी मिल गई। वास्तव में स्प्रिंग ने दबे हुए रामानुजन को ऊपर उठाने में "स्प्रिंग" (कमानी) का काम करके अपने नाम की सार्थकता

सिद्ध कर दी। फलतः रामानुजन के जीवन में भी एक बसंत (Spring) आया।

हालांकि एक अभूतपूर्व प्रतिभावान गणितज्ञ के लिये दफ्तर की बाबूगिरी किसी भी मापदंड से एक अच्छा कार्य नहीं कहा जा सकता, फिर भी यहां तो "मरता क्या न करता" वाली बात थी। रामानुजन को इस नियुक्ति से संतोष था, क्योंकि पेट भरने के लिये एक साधन हाथ में आ गया। रामानुजन कोई ऐश और आराम की जिन्दगी तो बिताना चाहते नहीं थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी की उनकी इस बहाली का उद्देश्य ही उनको अपने गणित-कार्य में मदद करना था।

वास्तव में अध्यक्ष महोदय स्प्रिंग स्वयं ही उनके गणित-कार्य में दिलचस्पी लेते थे। मुश्किल यह थी कि उनको पूरे परिवार का भी भरण पोषण करना पड़ता था। पैसों की कमी थी। अत. गणित करने के लिये यहां-वहां से पुराने कागज बटोरकर काम चलाते थे। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि पश्चिमी सभ्यता का आदर्श ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने का है, जबकि भारतीय आदर्श अपरिग्रह अर्थात् कम से कम में जीवन निर्वाह करने का है। रामानुजन की भी अपनी आवश्यकताएँ न्यूनतम थीं।

जब जीवन निर्वाह की मूल समस्या थोड़ी सी हल हो गई, तो फिर रामानुजन ने अपने गणित-कार्य के बारे में कैम्ब्रिज के प्रख्यात गणितज्ञ प्रो. जी. एच. हार्डी (Hardy) को सन् 1913 के प्रारंभ में एक पत्र लिखा, और साथ में अपने अनेक सूत्र (formulas) नमूने के रूप में भेज दिये। इस पत्र से एक ऐसे सम्पर्क का श्रीगणेश हुआ जो, रामानुजन की जीवनचर्या में सबसे बड़ा मोड़ लाया।

इस पत्र से कैम्ब्रिज में खलबली मच गई। क्योंकि कुछ परिणाम (फार्मूले) तो प्रो. हार्डी के लिये भी नए थे जिनको एक "सर्वोत्तम कोटि का गणितज्ञ" ही लिख सकता था। मानो रामानुजन के गणित हीरे के लिए हार्डी जौहरी मिल गया हो।

प्रो. हार्डी ने तुरन्त वास्तविक रामानुजन की खोज कर ली, और उसकी विलक्षण प्रतिभा को पहचान लिया। जरूरत थी तो इस बात की कि रामानुजन गणित की नवीनतम प्रगति से परिचित हों ताकि उनकी कार्य-क्षमता बढ़ सके। अतः हार्डी ने रामानुजन को अविलम्ब कैम्ब्रिज बुलाने का निर्णय लिया। लेकिन मामला इतना सरल न था क्योंकि माता-पिता के

विरोध का डर, जाति-विरादरी का चक्कर, धार्मिक रूढ़िवाद, समुद्र यात्रा से वरुण देवता का अपमान, और यहाँ तक कि श्रेय लूटने का प्रश्न इत्यादि समस्याएँ सिर उठाने लगीं।

इसी बीच भारतीय ऋतु-विज्ञान (Metereology) विभाग के अध्यक्ष डा. जी. टी. वाकर (Walker), एफ. आर. एस. मद्रास आये तो एफ. स्प्रिंग ने उनसे रामानुजन के कार्य की चर्चा की। वाकर महोदय ने मद्रास विश्वविद्यालय को पत्र लिखा कि "रामानुजन को अपना पूरा समय, आजीविका की चिंता किये बिना, गणित में लगाने की सुविधा दी जाये"।

डा. वाकर की सिफारिश पर मद्रास विश्वविद्यालय ने रामानुजन को 75 रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति मंजूर की। मालूम पड़ता है कि आज की तरह उन दिनों भी सिफारिश से काम जल्दी होता था। बाद में रामानुजन की विशेष योग्यता के कारण शोध-छात्रवृत्ति के लिये आवश्यक स्नातकोत्तर उपाधि (एम. ए.) की शर्त को भी ताक में रख देना पड़ा। मई 1913 में रामानुजन विश्वविद्यालय के शोध छात्र बन गये।

इस प्रकार इधर भारत में रह रहे स्प्रिंग और वाकर ने रामानुजन को पचड़े से बाहर निकाल दिया, तो उधर इंग्लैंड के हार्डी और नेविल (E. H. Neville) इत्यादि उनको कैम्ब्रिज बुलाकर गणित जगत में और अधिक चमकाना चाहते थे। जब पृथ्वी पर ये जोरदार प्रयत्न चल रहे थे, तो स्वर्ग में स्थित नामगिरि देवी ने भी रामानुजन को जीवन चर्चा के शिखर पर पहुंचा दिया। उसने रामानुजन की माता को स्वप्न में आदेश दे दिया कि वह अपने पुत्र के जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा न बने।

जब विरोध समाप्त हो गया, और शुभचिन्तकों ने समझ लिया कि रामानुजन का विदेश जाना सुरक्षित ही नहीं, बल्कि सब तरह से सबके हित में है, तो रामानुजन को इंग्लैंड पहुंचने में देर न लगी। प्रो. नेविल, जो उन दिनों गणित पर व्याख्यान माला देने भारत आये थे, ने जनवरी 1914 में मद्रास विश्वविद्यालय को एक विशेष पत्र लिखा। इसमें उन्होंने लिखा था कि "रामानुजन की प्रतिभा का आविष्कार गणितीय जगत में हमारे समय की सबसे रोचक घटना सिद्ध होने वाली है।" साथ ही विश्वविद्यालय से रामानुजन की प्रतिभा को और भी अधिक खिलने में सहयोग करने को कहा। उधर सर स्प्रिंग भी मद्रास के गवर्नर से मिल चुके थे और उनको एक पत्र भी लिखा था जिसमें सरकार से रामानुजन को आर्थिक सहायता के लिये स्वीकृति का अनुरोध किया गया था।

चित्र 5.2 विदेश में रामानुजन

बाद में सारी औपचारिकताएँ पूरी हुई। मद्रास विश्वविद्यालय ने सरकार की सहमति से रामानुजन को इंगलैंड में पढ़ने के लिये 250 पौंड प्रति वर्ष की छात्रवृत्ति (यात्रा खर्च के अतिरिक्त) मंजूर की। रामानुजन के अनुरोध पर इसमें से 60 रुपये मासिक उनके पिता के पास कुम्भकोणम भेज दिये जाते थे। भारत में तो कोई विद्वान ऐसा था नहीं जिससे गणित में रामानुजन को कुछ सीखना हो।

तीन हफ्ते की समुद्री यात्रा के बाद रामानुजन अप्रैल, 1914 में इंगलैंड पहुंचे जहाँ कैम्ब्रिज के विख्यात ट्रिनिटी (Trinity) कॉलेज में जुलाई में उनका दाखला हो गया। इस प्रकार अन्ततोगत्वा रामानुजन सही जगह पहुंच गये जहाँ उन्हें आठ वर्ष पूर्व होना चाहिए था। दुर्भाग्य से इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध (World War) छिड़ गया और अनेक गणितज्ञ कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय छोड़कर युद्ध संबंधी सेवा में लग गये। फिर भी सुप्रसिद्ध प्रो. हार्डी ने रामानुजन का मार्गदर्शन किया। हार्डी ने स्वीकार किया कि रामानुजन को उन्होंने जितना सिखाया "उससे कहीं ज्यादा मैंने उनसे सीखा"। हार्डी के शब्दों में रामानुजन "आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हैं" जिनकी अनोखी योग्यताएं और विधियां परम्परागत पद्धति से शिक्षित एक यूरोपीय गणितज्ञ से एकदम भिन्न कोटि की हैं।

यह कहा जा सकता है कि कैम्ब्रिज का जीवन रामानुजन के लिये एक व्यावसायिक (professional) गणितज्ञ की तरह था। वहां के शैक्षणिक दृष्टि से अनुकूल वातावरण में उन्होंने लगभग पांच वर्ष बिताए। दिन-रात गणित के बारे में सोचते रहने की आदत तो उनके साथ स्वाभाविक थी। नतीजा यह हुआ कि वहाँ रहकर उन्होंने अनेक नये, महत्त्वपूर्ण और एक से बढ़कर एक प्रमेयों और सूत्रों को प्राप्त किया। दर्जनों शोधपत्र प्रकाशित हुए। जैसी कि आशा की जाती थी, रामानुजन ने गणितीय कार्य में असाधारण अन्तर्दृष्टि और प्रवीणता प्रदर्शित की।

वहाँ अपने प्रवास की अवधि में रामानुजन की योग्यताओं का शीघ्र यथोचित सम्मान किया गया। कैम्ब्रिज निश्वविद्यालय ने शोध कार्य के कारण उन्हें 1916 में बी. ए. की उपाधि दी जिसे वे भारत में बिना परीक्षा पास किये प्राप्त नहीं कर सकते थे। फरवरी 1918 में रॉयल सोसायटी के सदस्य (Fellow) चुने गये जो उस समय अंग्रेजी साम्राज्य के वैज्ञानिक जगत में सर्वोच्च सम्मान माना जाता था। उसी वर्ष अक्टूबर में रामानुजन

को ट्रिनिटी कॉलेज के सदस्य चुने जाने का सम्मान मिला जिसके अन्तर्गत उन्हें 6 साल तक 250 पौंड वार्षिक मानदेय मिलने का प्रावधान था। उधर मद्रास विश्वविद्यालय ने भी उसी वर्ष के अन्त (अर्थात् दिसम्बर 1918) में रामानुजन को एक पत्र भेजा जिसमें अप्रैल 1919 से पांच साल के लिये रामानुजन को 250 पौंड सालाना सहायता की बात कही गयी थी। लेकिन उस समय इस बात को कोई नहीं जानता था कि रामानुजन अप्रैल 1920 में ही संसार छोड़कर चल बसेंगे, और उन पर पांच-छह वर्षों तक विदेशी मुद्रा की बौछार करने के स्वप्न अधूरे रह जायेंगे।

रामानुजन ने जो परिणाम, प्रमेय, और प्रश्नों के हल प्राप्त किये उनमें से कुछ नमूने यहां प्रस्तुत करते हैं, ताकि पाठक उनके गणित का दिग्दर्शन तो कम से कम कर लें, भले ही उनको सिद्ध न कर सकें।

1. संख्याओं के प्रतिरूप

$3^3 + 4^3 + 5^3 = 6^3$

$2^4 + 4^4 + 7^4 = 3^4 + 6^4 + 6^4$

2. यदि $(a+b+c) = 0$

तो $a^4+b^4+c^4 = 2(ab+bc+ca)^2$

3. आसन्नमान

$\pi = \frac{355}{113}\left(1 - \frac{0.0003}{3533}\right)$, जो कि 14 दशमलव तक सही है।

$e^{\pi\sqrt{22}} = 2508952$, जिसमें त्रुटि 1/500 से कम है।

4. समीकरण हल करो–

(i) $x^2 = y + a, y^2 = z + a, z^2 = x + a$

रामानुजन का उत्तर $x=9$, $y=4$.

(ii) $x^2 = y + a$, $y^2 = z+a$, $z^2 = x+a$

रामानुजन ने इनको पूर्णतया हल किया है।

5. श्रेणियाँ–

(i) $1 - \frac{1}{4} + \frac{1}{7} - \frac{1}{10} + \frac{1}{13} - \frac{1}{16} + ------ = \frac{\pi}{3\sqrt{3}} + \frac{1}{3}\log 2$

(ii) $\frac{1}{1^4}+\frac{1}{2^4}+\frac{1}{3^4}+\frac{1}{4^4}+\frac{1}{5^4}+------=\frac{\pi^4}{90}$

(iii) $\tan x = \frac{1}{(a-x)} - \frac{1}{(a+x)} + \frac{1}{(3a-x)} - \frac{1}{(3a+x)} + -----$

जहाँ $a = \pi/2$

6. विविध -

(i) $(1-2x + 2x^4-2x^7 + 2x^{16} ------)^{-1}$ में x^n का गुणांक (coefficient) निकालो।

(ii) यदि $ab = \pi^2$, और $(b/a) = k^4$, तो $[\frac{1}{2} + e^{-a} + e^{-4a} + e^{-9a} + \ldots\ldots\ldots\ldots]$

$= k\,[\frac{1}{2} + e^{-b} + e^{-4b} + e^{-9b} + ----]$

(iii) $\int_0^{\infty} \frac{dx}{(1+x^2)(1+r^2x^2)(1+r^4x^2)\ldots\ldots} = \frac{\pi}{2(1+r+r^3+r^6+r^{10}+\ldots\ldots)}$

भगवान को गणितज्ञ की आवश्यकता

जनवरी 1919 में रामानुजन ने मद्रास विश्वविद्यालय को लिखा कि "अपनी बीमारी के कारण पिछले दो सालों में मैं उतना गणित नहीं कर सका जितना पहले करता था।" वास्तव में वे कैम्ब्रिज में सख्त मेहनत करते थे। लेकिन खाने पीने की समस्या उन्हें हमेशा तकलीफ देती रही। उन जैसे शुद्ध शाकाहारी के लिये वहाँ उचित वस्तुएँ मिलनी आसान न थीं। संयमी, रूढ़िवादी और विशेष रुचि के कारण वे अपना खाना स्वयं पकाते थे।

मालूम पड़ता है कि गणित में विभोर रहने के कारण उन्होंने अपने खाने पीने पर उचित ध्यान नहीं दिया। वहाँ पत्नी और परिवार वाले तो थे नहीं जो इस लापरवाही का ख्याल करते। परिणाम यह हुआ कि उनका स्वास्थ्य गिरता गया और वे कमजोर होते

(7) If $2u = 11 + \frac{1}{x}\left\{\frac{(1-x)(1-x^2)(1-x^3)\cdots}{(1-x^5)(1-x^{10})(1-x^{15})\cdots}\right\}^6$

and $2v = 1 + \frac{1}{x^{1/5}}\left\{\frac{(1-x^{1/5})(1-x^{2/5})(1-x^{3/5})\cdots}{(1-x)(1-x^2)(1-x^3)\cdots}\right\}$

then $\sqrt[5]{\sqrt{u^2+1} - u} = \sqrt{v^2+1} - v$

$$= \frac{\sqrt[5]{x}}{1+}\,\frac{x}{1+}\,\frac{x^2}{1+}\,\frac{x^3}{1+}\,\frac{x^4}{1+}\cdots$$

(8) If $2u = 11 + 125x\left\{\frac{(1-x^5)(1-x^{10})(1-x^{15})\cdots}{(1-x)(1-x^2)(1-x^3)\cdots}\right\}^6$

and $2v = 1 + 5x\left\{\frac{(1-x^{25})(1-x^{50})(1-x^{75})\cdots}{(1-x)(1-x^2)(1-x^3)\cdots}\right\}$

then, $\frac{\sqrt{5}}{1 + \left(\frac{\sqrt{5}-1}{2}\right)\sqrt[5]{\sqrt{u^2+1} - u}} = \frac{\sqrt{5}}{1 + \left(\frac{\sqrt{5}-1}{2}\right)\left(\sqrt{v^2+1} - v\right)}$

$$= \frac{1+\sqrt{5}}{2} + \frac{x}{1+}\,\frac{x^5}{1+}\,\frac{x^{10}}{1+}\,\frac{x^{15}}{1+}\cdots$$

(9) If $\alpha\beta = \frac{\pi^2}{5}$, then

$$\left\{\left(\frac{\sqrt{5}+1}{2}\right)^5 + \left(\frac{e^{-2\alpha/5}}{1+}\,\frac{e^{-2\alpha}}{1+}\,\frac{e^{-4\alpha}}{1+}\cdots\right)^5\right\}$$

$$\times\left\{\left(\frac{\sqrt{5}+1}{2}\right)^5 + \left(\frac{e^{-2\beta/5}}{1+}\,\frac{e^{-2\beta}}{1+}\,\frac{e^{-4\beta}}{1+}\cdots\right)^5\right\}$$

$$= 5\sqrt{5}\left(\frac{\sqrt{5}+1}{2}\right)^5$$

चित्र 5.3 रामानुजन की नोटबुक का कुछ अंश

गये। वास्तव में उन्हें क्षयरोग ने जकड़ लिया था। उस रोग ने उन्हें कब पकड़ लिया था, यह कहना तो कठिन है, लेकिन प्रारम्भिक अवस्था में न उसकी कोई जांच हुई और न ही उपचार हुआ, ऐसा लगता है।

चिकित्सा के लिए 1917 की गर्मियों में वे पहले एक नर्सिंग होम में और बाद में अनेक अस्पतालों में रहे किन्तु रोग से छुटकारा न पा सके। इससे उनके गणित कार्य पर असर पड़ा, जैसा कि उन्होंने बाद में स्वयं (पत्र में) स्वीकार किया। विचार यही हुआ कि स्वदेश की अनुकूल जलवायु, पारिवारिक वातावरण और घरेलू आराम उनके लिए जरूरी है। अतः थोड़े से अच्छे होने पर मार्च 1919 में वे भारत वापिस आ गये।

प्राध्यापक हार्डी ने तो 1918 में ही कह दिया था कि रामानुजन एक ऐसी ऊंची प्रतिष्ठा और ख्याति के साथ भारत लौटेंगे जैसी किसी अन्य भारतीय ने कभी नहीं पाई है।

बम्बई बन्दरगाह पर उतरने के बाद वह रेलगाड़ी से मद्रास पहुँचे जहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। कुछ महीने बाद भारतीय गणित परिषद् (I.M.S.) ने उन्हें मानद सदस्य बना लिया।

थोड़े दिन मद्रास में रहने के बाद वह कुछ समय के लिये कोडुमुडि स्थान में, और फिर कुम्भकोणम में रुके। बाद में फिर मद्रास लौट आये। लेकिन उनके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ और वे दिन प्रतिदिन क्षीण होते गये। वे अक्सर ऐसे शब्द कहते थे जिससे लगता है कि उनको अपनी जीवन यात्रा की समाप्ति का नोटिस मिल गया हो। फिर भी वह गणित कार्य में अपना उत्साह दिखाते रहे। बीमारी की हालत में भी उन्होंने मोक थीटा फलनों (Mock Theta Functions) पर उच्चकोटि का शोध कार्य किया, और प्रो. हार्डी के पास उसे भेजा (जनवरी 1920 में)।

कहा जाता है कि उनका यथा सम्भव सर्वश्रेष्ठ उपचार चल रहा था, और दवादारू तथा सेवा सुश्रुषा में कोई कमी नहीं थी। लेकिन रोग उग्र होता गया और अन्त में उसने 26 अप्रैल 1920 को रामानुजन के प्राण हर लिये।

मालूम पड़ता है कि भगवान को उन जैसे उच्चकोटि के गणितज्ञ की तुरंत अति आवश्यकता थी, अन्यथा यहाँ का बहुल सा गणित कार्य अधूरा छोड़कर मात्र 32 वर्ष की आयु में वह स्वर्ग क्यों सिधारते। बाद में संसार के सैकड़ों बड़े बड़े शोधकर्त्ता उनके कार्य को पूरा करने

और उसे आगे बढ़ाने में लगे रहे और अब भी लगे हुए हैं। अभी हाल में ही उनके एक सूत्र पर आधारित संगणक विशेषविधि (Computer Algorithm) लगाकर π का मान करोड़ों दशमलव स्थानों तक निकाला गया है। किसी ने ठीक ही कहा है कि हस्त-कौशलीय योग्यता (manipulative ability) में श्रीनिवास रामानुजन (1887-1920) सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ थे, जिनकी दक्षता की तुलना लियोनार्ड ऑयलेर (Euler, 1707-1783) और कार्ल जेकोबी (Jacobi, 1804-1851) से की जा सकती है। शुद्ध गणितीय प्रतिभा के 0 से 100 तक के माप में प्राध्यापक हार्डी ने अपने को 25, जे.ई लिटिलवुड को 30, डेविड हिल्बर्ट को 80, और रामानुजन को पूरे 100 अंक दिये।

इस गणितीय पूर्णता प्राप्ति के बाद उनको यहाँ दीर्घायु होकर रहने की जगह शायद यही उचित समझा गया कि अब वे दूसरे लोक की पूर्णता का आनन्द लें। अतः जगत गुरु शंकराचार्य और स्वामी विवेकानन्द की तरह अल्पायु में ही अपना निर्धारित जीवन-उद्देश्य (life - mission) पूर्ण करके उस अज्ञात पूर्ण से जा मिले।

ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

मंत्ररूपी इस वैदिक शान्तिपाठ के साथ यह अध्याय और उसके साथ पुस्तक की भी समाप्ति करते हैं।

ओम् शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!